धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स

बुद्धगया मन्दिर का मुख्य द्वार (जीर्णोद्धार के पूर्व)।

वर्ष ६
अंक ३
सं० ६१

ज्येष्ठ बु० सं० २४८५
वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
विद्यार्थियों और पुस्तकालयों से ॥)
नमूना मुफ्त

विषय-सूची

——

शुभ कामना

महाबोधिसभा की स्थापना ३१ मई १८९१ को हुई थी। सभा ने अपने पचास वर्ष के जीवन में भारत एवं दुनिया के दूसरे अनेक मुल्कों में बौद्धधर्म के प्रचारार्थ जो उद्योग किया है और उसे जो सफलता मिली वह हमारी आँखों के सामने है। भारत के अनेक शहरों में सभा की शाखाएँ हैं। दिन-दिन कार्य का विस्तार होता जा रहा है। सभा की इस सफलता को देखते हुए हमें विश्वास है कि अब वह दिन अधिक दूर नहीं है जब इस पवित्र भूमि पर हम पुनः एक बार भगवान् बुद्ध के सन्देश को प्रतिष्ठित देखेंगे।

चीन का उपहार

महाबोधिसभा के पचासवाँ वर्ष पूरा करने के अवसर पर जेनरल चांगकाइ-शेक और डाक्टर चेन ली-फू (शिक्षामंत्री) ने प्रो॰ तान युन शेन् की मारफत चीनी भाषा के त्रिपिटक का एक पूरा सेट भेजा है। त्रिपिटक का यह संस्करण शंघाई में छपा था और इसमें कुल १९१६ पुस्तकें हैं। त्रिपिटक का यह अमूल्य सेट मूलगंधकुटीविहार-पुस्तकालय में रखा जायगा।

अनुकरणीय दान

"धर्म-दूत" के पाठकों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि बर्मा-प्रवासी श्री आर॰ एल॰ सैनी ने "धर्म-दूत" प्रकाशन विभाग को १००) का दान दिया है। हम आपको इस उदारता के लिए हृदय से धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं दूसरे धर्म-प्रेमी भाई भी आपका अनुकरण करेंगे।

लाभ उठावें

सैनी महाशय ने जो १००) का दान दिया है उससे हम चाहते हैं कि सौ सार्वजनिक पुस्तकालयों को एक साल के लिए "धर्म-दूत" निःशुल्क दिया जावे। अतः पुस्तकालयाध्यक्षों से निवेदन है कि वे यथाशीघ्र अपने अपने पुस्तकालयों के नाम और पूरा पता लिखकर 'धर्म-दूत' कार्यालय, सारनाथ (बनारस) भेजें।

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, जून बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४१ | अंक २

भगवान् बुद्ध के प्रति

(लेखक—श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला')

आज सभ्यता के वैज्ञानिक जड़ विकास पर
गर्वित विश्व नष्ट होने की ओर अग्रसर
स्पष्ट दिख रहा; सुख के लिये खिलौने जैसे
बने हुए वैज्ञानिक साधन; केवल पैसे
आज लक्ष्य में हैं मानव के; स्थल-जल-अम्बर
रेल-तार-बिजली-जहाज-नभयानों से भर
दर्प कर रहे हैं मानव, वर्ग से वर्ग गण,
भिड़े राष्ट्र से राष्ट्र, स्वार्थ से स्वार्थ विचक्षण।
हँसते हैं जड़वादग्रस्त, प्रेत ज्यों परस्पर,
विकृत-नयन-मुख, कहते हुए, अतीत भयङ्कर
था मानव के लिये, पतित था वहाँ विश्वमन,
अपटु, अशिक्षित, वन्य हमारे रहे बन्धुगण;

नहीं वहाँ था कहीं आज का मुक्त प्राण यह,
तर्क सिद्ध है, स्वप्न एक है विनिर्वाण यह।
वहाँ बिना कुछ कहे, सत्यवाणी के मन्दिर,
जैसे उतरे थे तुम, उतर रहे हो फिर फिर
मानव के मन में, जैसे जीवन में निश्चित
विमुख भोग से, राजकुँवर, त्यागकर सर्वस्थित
एक मात्र सत्य के लिये, रूढ़ि से विमुख, रत
कठिन तपस्या में, पहुँचे लक्ष्य को, तथागत !
फूटी ज्योति विश्व में मानव हुए सम्मिलित,
धीरे-धीरे हुए विरोधी भाव तिरोहित;
भिन्न रूप से भिन्न-भिन्न धर्मों में सञ्चित
हुए भाव, मानव न रहे करुणा से वञ्चित;
फूटे शत-शत उत्स सहज मानवता-जल के
यहाँ-वहाँ पृथ्वी के सब देशों में छलके;
छल के, बल के पङ्किल भौतिक रूप अदर्शित
हुए तुम्हीं से, हुई तुम्हीं से ज्योति प्रदर्शित।

बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्त

(लेखक—भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए०)

बौद्ध धर्म के मूल सिद्धान्त तीन हैं—(१) सत्ता अविच्छिन्न रूप से प्रवाह-शील है; (२) एक में अनेक की और अनेक में एक की उपलब्धि होती है; (३) निर्वाण ही परम शान्त है।

(१) सत्ता अविच्छिन्न रूप से प्रवाह-शील है

हमारे कमरे में जो बिजली का प्रकाश जल रहा है, वह देखने में स्थिर मालूम होता है; किन्तु यथार्थ में यह एक अटूट प्रवाह है जो बिजली की धारा से बल्ब में प्रत्येक क्षण पैदा होकर चारों ओर व्याप्त हो रहा है। उसी प्रकार जितने भी पदार्थ हैं, चाहे कितने भी ठोस और कठोर क्यों न हों, वे क्षण-क्षण नए होकर उत्पन्न हो रहे हैं। उनका अविच्छिन्न प्रवाह चल रहा है। छोटे से छोटा ज़र्रा भी दो क्षण तक 'एक' बना नहीं रहता।

इसी अनित्यता की भावना करते हुए ग्रीस देश के प्रसिद्ध दार्शनिक '**हेरेक्लाइट्स**' ने कहा कि "कोई मनुष्य एक नदी में दो डुबकियाँ नहीं ले सकता"। जब एक डुबकी लेकर वह बाहर निकलेगा और दूसरी लेने की तैयारी करेगा, इतने में नदी का कण-कण बदल जायगा और वह स्वयं भी वहीं न रहेगा।

अब प्रश्न हो सकता है कि "यदि पदार्थ इतनी तेज गति से प्रवाहित हो रहे हैं तो वे स्थिर क्यों प्रतीत होते हैं, और उनकी प्रत्यभिज्ञा कैसे हो सकेगी ?"

इसके उत्तर में बौद्ध दर्शन का कहना है कि बाह्य भौतिक पदार्थों के साथ-साथ **चित्त** भी अविच्छिन्न रूप से प्रवाह-शील है, जिससे उनकी गति-शीलता का भाव चित्त को नहीं होता।

पौधा धीरे-धीरे बढ़कर एक बड़ा पेड़ हो जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि उसका विकास प्रत्येक क्षण अनवरत रूप से होता रहता है। किन्तु माली क्या घड़ी-घड़ी उसके परिवर्त्तन को देख पाता है ? कल्पना करें कि माली पौधे के सामने बैठकर उसे एकटक सप्ताह भर देखता रहे कि पौधे में किस क्षण परिवर्त्तन हुआ, तो क्या वह वैसे क्षण को पकड़ सकेगा ? नहीं ; उसका विकास इतना सूक्ष्म और इतना अविच्छिन्न है कि यह सम्भव नहीं कि ऐसा कोई क्षण जाना जा सके। हम पदार्थ के जितना नजदीक रहते हैं उसकी परिवर्त्तनशीलता का हमें उतना ही कम भान होता है। परिवर्त्तन का बोध होने के लिए आवश्यक है कि हम उस वस्तु की किसी अतीत अवस्था का चित्र मन में लाकर उसकी वर्तमान से तुलना करें। जब हम किसी बच्चे को एक-दो साल के बाद देखते हैं और उसकी तुलना पहले देखी हुई अवस्था से करते हैं तब हमें उसमें बड़ा परिवर्त्तन मालूम होता है। किन्तु उसकी माँ को इस परिवर्त्तन का उतना पता नहीं लगता; क्योंकि वह बच्चे के बिल्कुल निकट रहती है।

तट पर स्थित स्थिर चीज़ों को ही देखकर चलती नौका पर बैठा आदमी उसकी गति का अन्दाज़ा करता है। यदि बग़ल में चलती किसी दूसरी नौका पर वह दृष्टि रक्खे तो उसे अपनी गति का ठीक ठीक पता नहीं लग सकता।

ठीक उसी तरह सभी ज्ञेय पदार्थ हमें तब तक स्थिर मालूम होते हैं जब तक हम उनके पहले की किसी स्थिति का ख्याल नहीं करते। किन्तु यथार्थ में ज्ञेय और ज्ञाता (=चित्त) दोनों अविच्छिन्न रूप से प्रवाह-शील हैं।

नदी के तल पर जिस प्रकार एक तरंग उठती है फिर दूसरी और फिर तीसरी, उसी प्रकार सत्ता क्षण-क्षण उत्पन्न होती, स्थित रहती और भङ्ग हो जाती है और भङ्ग होते दूसरा क्षण उत्पन्न कर देती है। इस तरह मानसिक तथा भौतिक सभी अवस्थाओं की सन्तति अबाध रूप से चल रही है।

पानी जमकर बर्फ़ और जलकर वाष्प हो जाता है। यहाँ बर्फ़, पानी और वाष्प एक ही सन्तति के तीन क्षण हैं। वे एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न भी नहीं और एक भी नहीं हैं। "न सो न अञ्ञो"।

सूखे घास के खेत के एक कोने में कोई आग जला दे तो वह बढ़ती-बढ़ती दूसरे कोने तक पहुँच जायगी। यह आग वही नहीं है, जो मनुष्य ने जलाई थी, किन्तु उसी से उत्पन्न होनेवाली सन्तति में होने के कारण भिन्न भी नहीं कही जा सकती। इस कोने में भी आग लगाने की ज़िम्मेदारी उसी पर होगी।

अनित्यता के प्रबल प्रवाह में वस्तु के अत्यन्त परिवर्तित हो जाने पर भी हम उसे 'उसी' भ्रम से जानते रहते हैं। इसका मुख्य कारण है, उससे हमारे स्वार्थ की सिद्धि का होते रहना।

में एक चीज़ की ओर इशारा करके पूछता हूँ 'क्या यह बहुत दिन चलेगी ?' इसका क्या मतलब है ? यही न कि क्या यह बहुत दिन तक मेरे स्वार्थ की पूर्त्ति करती रहेगी ? इससे अधिक और क्या ?

मेरे मित्र के पास लगभग तीस वर्ष से एक बाइसिकिल है। वे एक एक करके इसके हर एक पुर्जे को कभी न कभी बदल चुके हैं। सारी साइकिल की कितनी बार मरम्मत हो चुकी है, और कितनी बार उस पर रोगन फिर चुका है। लेकिन फिर भी उनका कहना है कि यह उनकी वही साइकिल है, जिसे उन्होंने तीस वर्ष पहले खरीदा था। इतने परिवर्त्तन होते हुए भी, इस साइकिल को वे "यह वही है" केवल इसलिए समझते हैं कि इस पर चढ़ने का जो उनका स्वार्थ है, वह इतने दिनों तक बराबर सिद्ध होता रहा है।

यद्यपि अपने व्यवहार में हमें 'टिकाऊ', 'वही है' आदि शब्दों का प्रयोग करना ही पड़ता है ; किन्तु परमार्थ की दृष्टि से यह हमारे अज्ञान के परिचायक हैं।

जब तक हम अपनी तृष्णा का अन्त नहीं कर देते, तब तक हमारी **सक्कायदिट्ठी** अर्थात् वस्तु को 'वही है' ऐसा समझने की अविद्या बनी रहेगी, और हम मानसिक तथा भौतिक अवस्थाओं की अनित्यता को नहीं देख सकेंगे।

आचार्य बुद्धघोष ने अनित्यता की व्याख्या करते हुए कहा है—

"यथार्थ रूप से देखा जाय, तो एक प्राणी का जीवनकाल एक चित्त-क्षण मात्र है। जिस प्रकार रथ का पहिया चलते हुए, या खड़ा रहते अपने एक अल्प अङ्ग पर ही चलता या खड़ा रहता है, उसी प्रकार प्राणी का जीवन-काल एक ही चित्त-क्षण है।

"बीते चित्त-क्षण की अवस्था में 'वह' जीता था, न जीता है, और न जीएगा ; भविष्य के चित्त-क्षण की अवस्था में 'वह' जीएगा, न जीता था, और न जीता है; वर्त्तमान चित्त-क्षण की अवस्था में 'वह' जीता है, न जीता था और न जीएगा।"

काल

यदि यही वास्तविकता है तो फिर अतीत, वर्त्तमान, भविष्यत् से हम क्या समझें ? अतीत, वर्त्तमान तथा भविष्य की कल्पना हमें उसी चीज़ के सम्बन्ध में होती है जिसे हम 'वही' समझते हैं। पहले यह ऐसी न थी। **अब यह** ऐसी है, भविष्य में **यह** ऐसी रहेगी। अथवा मैं वहाँ था, अब मैं यहाँ आ गया हूँ और मैं वहाँ जाऊँगा। इसे स्पष्ट रूप से यों कहा जा सकता है—'एक ही बनी रहनेवाली सत्ता' कल्पना के आधार पर **पूर्व और पर का विचार ही काल है।**

लेकिन हम देख चुके हैं कि यहाँ अनित्य ही अनित्य है और ज्ञान के प्रकाश में बनी रहनेवाली कोई सत्ता नहीं दिखाई पड़ती।

जब अर्हत्, अपनी अविद्या का मूलोच्छेद कर अनित्यता का साक्षात्कार कर लेता है तब वह पूर्व और पर के मोह से छूट जाता है। भगवान् बुद्ध ने ऐसे व्यक्ति को 'अकप्पियो' अर्थात् कल्प = काल = मृत्यु के सम्बन्ध से मुक्त कहा है।

(अगले अंक में समाप्त)

—

द्वितीय-धर्म-संगीति

(अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन)

मित्र-द्रोही **उदयभद्र** (४५६-४४३ ई० पू०) ने अपने पिता **अजातशत्रु** को मारकर सोलह वर्ष राज्य किया। **अनुरुद्ध** (४४३-४३५ ई० पू०) ने भी अपने पिता **उदयभद्र** और **मुण्ड** ने अपने पिता **अनुरुद्ध** को मारकर राज्य किया। इन दोनों मित्र-द्रोही दुर्मति (राजाओं) का राज्य-काल आठ वर्ष (रहा)। पापी **नागदास** (४३५-४११ ई० पू०) ने अपने पिता **मुण्ड** को मारकर २४ वर्ष राज्य किया। "यह पितृ-घातक वंश है" इसलिए क्रोधित हो सब नागरिकों ने मिलकर **नागदास** को गद्दी से हटा दिया और **शिशुनाग** (४११-३६३ ई० पू०) नाम से प्रसिद्ध सम्माननीय अमात्यको सबके हित के लिए राज्य पर अभिषिक्त किया। उस राजा (शिशुनाग) ने १८ वर्ष राज्य किया। उसके पुत्र **कालाशोक** (३६३-३६५ ई० पू०) ने २८ वर्ष।

कालाशोक के शासन के दसवें वर्ष में भगवान् के परिनिर्वाण को सौ वर्ष पूरे हुए। उसी समय **वैशाली*** वासी अनेक लज्जा रहित **वज्जिपुत्र** (भिक्षु) इन दस बातों† का समर्थन करने लगे:— १. सींग का नमक, २. दो अंगुल, ३. ग्रामान्तर, ४. आवास, ५. अनुमति, ६. आचीर्ण, ७. अमथित, ८. जलोगीपान, ९. बिना किनारी का आसन, १०. सोना-चाँदी। इसको सुनकर **वज्जिदेश**‡ में विचरते हुए छः अभिज्ञ§

---

* **वैशाली**—बसाढ, जिला मुजफ्फरपुर (बिहार)।

† दस बातें—**सिंगि-लोण-कप्प**—सींग के पात्र में रखे नमक से अलोने भोजन को नमकीन करना, (२) **द्वींगुल कप्प** - निश्चित मध्याह्न समय के पश्चात् सूर्य के दो अंगुल अधिक उतर जाने तक मध्याह्न भोजन कर सकना, (३) **गामंतर**—मध्याह्न काल के भोजन के बाद भी ग्राम में जाना और निमंत्रित किये जाने पर दुबारा भोजन कर सकना, (४) **आवासकप्प**—एक ही प्रदेश में रहने-वाले भिक्षुओं के लिए भी अपना अपना उपोसथागार पृथक् पृथक् बना सकना, (५) **अनुमतिकप्प**—पीछे आनेवालों को ऐसे बिना उपोसथ ही स्वीकृत देने की इच्छा से, थोड़े से भिक्षुओं से ही उपोसथ कर्म का कर सकना, (६) **अचीएण**—गुरु, दादा गुरु के आचार को प्रमाण मानना, (७) **अमथित-कप्प**—भोजन काल के बाद भी दूध और दही के बीच की अवस्था वाले दूध को पी सकना, (८) **जलोगीकप्प**—मध्य भाव को अप्राप्त, बिना खींची सुरा पी सकना, (९) **अदसक निसीदन-कप्प**— बिना किनारी का आसन रख सकना, (१०) **जातरूप, रजत, कप्प**—सोना, चाँदी का ग्रहण कर सकना।

‡ गंगा से उत्तर, गण्डक (नदी) से पूर्व, हिमालय से दक्षिण बाग्मती (नदी) से पश्चिम का प्रदेश—जिसमें आजकल बिहार के मुजफ्फरपुर और चम्पारन के जिले हैं।

§ इद्धि विधं दिब्ब सोतं परचित्त विजाननं।

पुब्बे निवासानुस्सति, दिब्ब चक्खुति पञ्चधा ॥

आसवक्खय करं आनं......... .... (अभिधम्मत्थ संगहो)।

प्राप्त काकन्द पुत्र **यश** स्थविर उस (विवाद) को दूर करने के लिए उत्साह सहित **महावन*** (विहार) गये।

वह (वज्जिपुत्र भिक्षु) **उपोसथागार**† के आगे जलभरी काँसे की थाली रखकर उपासकों (गृहस्थों) से कहते थे, कि सङ्घ के लिए रुपया पैसा (कहापणादि‡) चढ़ाओ"। यश स्थविर ने कहा—"यह धर्मानुकूल नहीं है। मत दो।" उन भिक्षुओं ने उन्हें (यश स्थविर) **प्रतिसारणीय**§ कर्म से दण्डित किया। **यशस्थविर** उन (भिक्षुओं) से साथ चलने के लिए आदमी लेकर, उसके साथ नगर में गये, और नगर-निवासियों (उपासकों) को अपना धर्म-पक्ष समझाया। **यश** स्थविर के साथ भेजे हुए आदमी से सब वृत्तान्त सुनकर उन भिक्षुओं ने स्थविर का **उत्क्षेपणीय**|| कर्म करने के लिए उनका घर घेर लिया।

यश स्थविर जल्दी ही आकाश मार्ग से चले गये और **कौशाम्बी**¶ में ठहरकर वहाँ से **पावा**× और **अवन्ती**+ के भिक्षुओं के पास दूत भेजा। वहाँ से स्वयं **अहोगंग**= पर्वत पर जा सानुवासी **सम्भूत** स्थविर से सब हाल कहा।

पावावाले साठ और अवन्तीवाले अस्सी यह सब महाक्षीणास्रव स्थविर अहोगंग पर्वत पर इकट्ठे एक साथ आये। आपस में सम्मति करके जहाँ-तहाँ से सब मिलकर नब्बे हजार भिक्षु एकत्रित हुए। बहुश्रुत, अनाश्रव, सौरेय्य **रेवत** स्थविर को उस काल में सबसे प्रमुख जानकर (वह) उनसे मिलने के लिए निकले। उनकी सलाह को अपनी दिव्य शक्ति से जान सौरेय्य **रेवत** स्थविर सुख से पहुँचने की इच्छा से (पहले ही) **वैशाली** चल दिये। उन (रेवत स्थविर) के सवेरे छोड़े हुए स्थान पर शाम को पहुँचते हुए, स्थविरों ने अन्त में उन्हें **सहजाति** ÷ स्थान पर देखा।

सम्भूत स्थविर के कहने पर **यश** स्थविर ने सद्धर्म सुनने के अनन्तर **रेवत** स्थविर से दस बातें पूछीं। स्थविर ने उन्हें सुनकर उस विवाद का खण्डन किया और कहा, "ये निषिद्ध हैं।"

---

* सम्भवतः बसाढ़ से दो मील उत्तर पश्चिम, वर्त्तमान कोलुआ जहाँ पर अशोक स्तम्भ अब भी वर्त्तमान है।

† प्रत्येक सीमाबद्ध भिक्षु-निवास में एक घर जहां पर अष्टमी और चतुर्दशी को एकत्र हो भिक्षु अपने अपने दोषों को स्वीकार करते हैं।

‡ कहापण (संस्कृत : कार्षापण) तांबे का एक चौकोर सिक्का।

§ जनसाधारण से क्षमा माँगने के लिए जाने का दण्ड।

|| घर से निकाल बाहर करने का दण्ड।

¶ वर्त्तमान कोसम (जिला इलाहाबाद) यमुना के किनारे वत्स देश की राजधानी थी।

× मल्लों की राजधानी।

+ वर्त्तमान मालवा जिसकी राजधानी उज्जैन थी।

= संभवतः हरिद्वार के ऊपरी पर्वत।

÷ भीटा (जिला इलाहाबाद)।

दुष्ट (वज्जीपुत्र) भी अपने पक्ष के समर्थन के लिए, **रेवत** स्थविर के दर्शनार्थ भिक्षुओं के योग्य अनेक उपहार लेकर, शीघ्र ही नाव द्वारा **सहजाति** पहुँचे और भोजन के समय भोजन बनाने की तैयारी करने लगे।............।

वे (वज्जीपुत्र) उपहार लेकर **रेवत** (स्थविर) के पास पहुँचे, लेकिन स्थविर ने उनके पक्ष को स्वीकार नहीं किया और उस पक्ष के ग्रहण करनेवाले (अपने शिष्य) को भी हटा दिया। वहाँ से वह वैशाली चले गये।...............।

यहाँ **सहजाति** में ११ लाख नब्बे हजार भिक्षुओं ने **रेवत** स्थविर के पास आकर कहा, "इस झगड़े को आप शान्त करें।" स्थविर ने कहा, "झगड़े के जो मूल (हैं, उनके) बिना इस झगड़े का शमन नहीं हो सकता। इसलिए वह सब भिक्षु (वहाँ से) **वैशाली** गये।

× × × ×

(इसके बाद) संघ उन दस बातों का निश्चय करने के लिए एकत्रित हुआ। उस समय वहाँ संघ में अनेक अनर्गल बातें होने लगीं। तब **रेवत** स्थविर ने सारे संघ को सुनाकर कहा कि इन बातों का पञ्चायत के द्वारा फैसला होना चाहिए। उस विवाद की शान्ति के लिए चार पूर्व के, चार पश्चिम के भिक्षुओं को पंच चुना।........ ..... (सब) उस विवाद का निर्णय करने के लिए भीड़-भाड़ से शून्य, शान्त **बालुकाराम** में गये।

...............प्रश्न पूछने में चतुर महास्थविर **रेवत** ने, उन दस बातों में से एक एक बात क्रम से **सर्वकामी** स्थविर से पूछी। **सर्वकामी** स्थविर ने कहा, "यह तमाम बातें धर्म-विरुद्ध हैं।" उन्होंने वहाँ क्रम से विवाद का निश्चय करके, फिर संघ में भी उसी तरह प्रश्नोत्तर किया। महास्थविरों ने उन दस बातों के प्रचारक दस हजार भिक्षुओं का निग्रह (दण्ड) किया।

भिक्षु हुए, सर्वकामी महास्थविर को उस समय एक सौ बीस वर्ष हो गये थे। वे ही उस समय पृथ्वी पर संघ-स्थविर थे।

...........रेवत स्थविर ने चिरकाल तक धर्म की स्थिरता के लिए धर्म-संगीति करने के निमित्त सब भिक्षुओं में से अर्थ, धर्म आदि पटिसम्भिदाओं के ज्ञान में प्रवीण, त्रिपिटकज्ञ सात सौ भिक्षुओं को चुना। उन सबने **कालाशोक** द्वारा रक्षित **बालुकाराम** में, **रेवत**-स्थविर की प्रधानता में धर्म-संग्रह किया। पहले जिस तरह धर्म को (संग्रह) किया गया, तथा पीछे (उसका) भाषण किया गया, वैसे ही धर्म को ग्रहण कर, आठ मास में इस संगीति को समाप्त किया।

इस प्रकार दूसरी संगीति को सम्पादन कर रागादि रहित, वह महायशस्वी स्थविर भी, काल पाकर निर्वाण को प्राप्त हुए।

वन्दना या प्रयोजन

(ले० सुमन वात्स्यायन)

परम पवित्र त्रिरत्न यातः वन्दना याय्गु या उद्देश्यछु ?, भीसं वन्दना याना भगवान् बुद्ध याके छुं याचना नं याःला ? छु भीसं वन्दना यानागु लिं खुशी जुया वस्पोलं भीतः धन-दौलत बीला ? मखु थुगु कथं मखु। वन्दना या उद्देश्य त्रिरत्न या गुण यागु स्मरण याय्गु खः। बुद्ध धर्म एवं सङ्घ पिनिगु गुणानुवाद याय् वं भीतः आपालंहे फायदा दु। वस्पोल पिनिगु गुण स्मरण यात धाःसा भीगु हृदय पवित्र जुई। भीसं वस्पोल पिनिगु उपदेश यातः स्मरण याना, उकेयागु अनुसारं चर्य्यायाइम्ह यातः सचेष्ट जुई। संसार या आकर्षण; काम, क्रोध, लोभ, मोह स विजय प्राप्त याय् या निम्ति भीगु हृदये उत्साह जुयावई। हानं भीपिं पुण्य कर्म याय्तः अग्रसर एवं पापकर्म यायगुलिं विमुख जुइ फई।

गुम्ह व्यक्ति सत्यमार्ग तोता तापाक च्वनी, गुम्ह सें मिथ्या यातः सत्य भालपा जुई उम्ह सयागु भ्रम दूर याय या निम्ति वन्दना याय्गु मदेक हे मगा। मनुष्य या चित्त अनेक पाप कर्म लगेजुया मलिन जुयावनी। बुद्ध, धर्म व सङ्घ गुण यातः स्मरण याना (= लुमंका) मानव चित्त यागु। दाग नष्टजुया भिं भिंगु कर्मयातः सम्पादन याय्गु प्रेरणा जुई।

थुगु दुःखमय संसारं मुक्त जुयावनेतः पुण्य कर्म याय्गु हे उत्तम जुयाच्वन। पुण्य कर्म मयासें चित्त यातः परिशुद्ध ज्वीगु असम्भव। साधारण जन पिसं मन यातः निर्मल याय्या निम्ति सरल उपाय यागु हे अवलम्बन याय् माः। 'पूजा-विधि' धैगु अत्यन्त उपयोगी खः। थुके यातः छगू साधारण उपासक व उपासिका पिसं नं सरल भावं याग् फुगु खः।

सकल गृहस्थ पिसं सुथे सूर्य उदय मजुवं दनेगु। नित्यकर्म यानाली सत्तिक दुगु छगू विहारे वना त्रिरत्न-वन्दना व पूजा याना, विहार या भिन्नु पिन्तः वन्दना याना स्वगृहे ल्याहाँ वया थःथःगु कार्य कर्मे लगे जुयगु। यदि विहार तापाना अथवा छुं कार्यवश वनेमफुत धाःसा स्वगृहे हे जूसां वन्दना व पूजा याय्गु। प्रत्येक या गृहे वन्दना याय्तः बुद्ध मूर्त्ति वा तस्वीर आवश्यक जुयाच्वन। प्रथम पूजाया सामाग्रि-धूप-दीप-पुष्प आदिं पूजा याना हानं पुचलिं फेतुना स्वंगू वार **'नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स'** धका ब्वनेगु। थनंली बुद्ध धर्म व सङ्घ यागु वन्दना याय्गु। यदि फत धाःसा वन्दना व पूजा थपिं पालि भाषां यायगु असल। तर सुघां थें म्हुटुं जक ब्वनेगु मखु, वांलाक श्रद्धा चित्त याना मनं मनं अर्थ नं ल्वीका याय्गु उत्तम।

त्रिरत्न-वन्दना व पूजा प्रत्येक उपासक व उपासिका पिन्तः दैनिक कर्म खः। अतः सर्वोत्तम थ्व खः कि मचां नसें हे थःथः मचातेतः वन्दना यागु मंत्र मुखस्थयाका तेमागु खः। मचा बले यागु अभ्यास अधिक दृढ़ जुया च्वनी।

दान, शील, व भावना आदि यागु व्याख्या थ्वहे "धर्म-दूत" या दूसरा भागे वर्णन जुई।

नालन्दा के खण्डहर में

कुछ लोग साधन-सम्पन्न होने पर भी कुछ नहीं कर पाते हैं, किन्तु कुछ ऐसे भी कर्मठ हैं जो साधन-विहीन होते हुए भी बहुत कुछ कर जाते हैं। उन्हीं साधन-विहीन किन्तु कर्मठ युवकों में भाई सत्यपालजी हैं। संसार के प्राचीनतम विश्वविद्यालयों में से नालन्दा अद्वितीय था। किसी दिन दुनिया के कोने-कोने से विद्या प्रेमी लोग नालन्दा में आकर अपनी ज्ञान-पिपासा को तृप्त करते थे। किन्तु आज ज्ञान का भण्डार वह नालन्दा विश्वविद्यालय जमीन के नीचे पड़ा है। हमारे सत्यपालजी आज कई वर्षों से उसी ज्ञान-भूमि में कुछ करने का प्रयत्न कर रहे हैं। नीचे हम उनके कार्यों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं:—

नालन्दा आश्रम—सन् १९३८ के दिसम्बर मास से नालन्दा-आश्रम का कार्य आरंभ किया गया। यह आश्रम खण्डहर के पास खुले मैदान में स्थित है। आश्रम के साथ विद्यालय, पुस्तकालय, कला-भवन, उद्योगशाला और औषधालय की जो योजना है, उनमें अभी तक केवल विद्यालय की स्थापना हो सकी है।

नालन्दा विद्यालय—२५ जनवरी १९३९ को 'नालन्दा-विद्यालय' का शिला-न्यास हुआ। मार्च तक एक साधारण मकान, रसोईघर और अध्यापकों के लिए एक कच्चा निवासस्थान बनाया गया। शुरू-शुरू में विद्यालय में सिर्फ दो छात्राएँ और तीन छात्र थे, किन्तु आजकल सौ से भी ऊपर विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। अभी दर्जा सात तक की पढ़ाई होती है। विद्यालय के साथ ही, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग की प्रथमा और मध्यमा तथा संस्कृत की प्रथमा और मध्यमा की भी पढ़ाई होती है। हिन्दी और संस्कृत के लिए अलग अलग अध्यापक हैं। विद्यालय के साथ एक पुस्तकालय और वाचनालय भी है।

भाई सत्यपाल जी की साधना सफल हों।

हमारी नजरों में

(१) **"नयी दुनिया"** (मासिक) वर्धा। वा० मू० २)। यह पत्रिका सत्य-समाज के सिद्धान्तों के प्रचारार्थ निकाली जाती है। इसका उद्देश्य है सभी धर्मों में समभाव और एकता स्थापित करना। चाहे संसार के दूसरे देशों को इसकी जरूरत हो या न हो किन्तु भारत को इसकी सख्त जरूरत है। नई दुनिया के सभी लेख इसी **सम-भाव** से लिखे जाते हैं और विचारपूर्ण तथा पठनीय होते हैं। हम हृदय से इस पत्रिका की उन्नति चाहते हैं।

(२) **"जैन-सिद्धान्त-भास्कर"** (अर्द्धवार्षिक) आरा। वा० मू० ३)। इस पत्रिका का आधा भाग अँगरेजी में और आधा हिन्दी में रहता है। इसमें जैन धर्म, कला, साहित्य, दर्शन, पुरातत्त्व आदि विषयों पर सुन्दर लेख रहते हैं। पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के लिए पत्रिका उपादेय है।

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० ने अनेक पाली के ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिए कटिबद्ध है, किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं—(१) पुस्तकों को खरीद और प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें (धम्मपद, मज्झिम निकाय, विनय-पिटक और दीघनिकाय) तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)	पालि महाव्याकरण	५)
मज्झिम निकाय	६)	वादन्याय (संस्कृत)	३)
विनय-पिटक	६)	बुद्धचर्या	५)
जातक कथा (प्रथम भाग)	१)	अभिधर्मकोष: (संस्कृत)	५)
धम्मपद	≡)	वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)	तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध-वचन	।≡)	बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	—)	भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
उदान	१)	बुद्ध	—)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)	बोधिद्रुम	।)
पूजा-विधि (...री)	=)	महापरिनिर्वाण सूत्र (प्रेस में)	

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार,

सारनाथ, बनारस।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

धर्म-दूत

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स
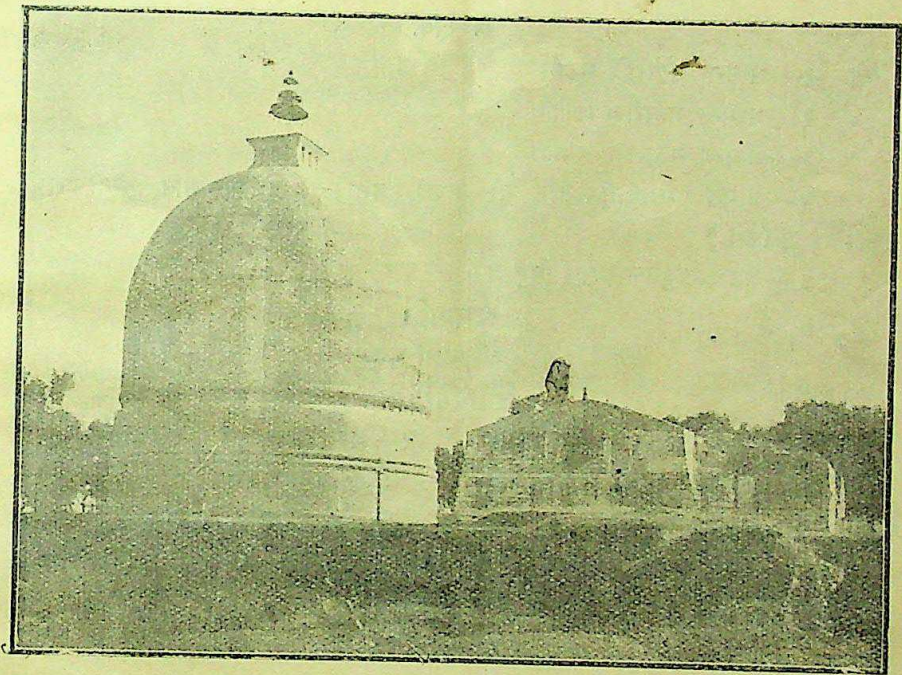
कुशीनगर का महापरिनिर्वाण-स्तूप

वर्ष ६
अंक ५
स० ६३

श्रावण बु० सं० २४८५
वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
विद्यार्थियों और पुस्तकालयों से ।।)
नमूना मुफ्त

विषय-सूची

महा बोधि सभा का ४९ वाँ जलसा

—२७ अप्रिल को कलकत्ता में सर मन्मथनाथ मुकर्जी के सभापतित्व में महाबोधि सभा का ४९ वाँ सालाना जलसा हुआ। निम्नलिखित अधिकारियों का चुनाव हुआ—

संरक्षक

१—श्रीमन्त महाराज भूटान

२—श्रीमन्त महाराज सिकिम

३—श्रीमन्त महाराज बड़ोदा

४—श्रीयुत सम्माननीय ताय ची ताओ, सभापति, परीक्षासमिति, चीनी राष्ट्रीय सरकार (चुंकिंग)

५—सेठ श्री युगलकिशोर बिड़ला

सभापति

सर मन्मथनाथ मुकर्जी

उपसभापति

१—चीनी राजदूत (कलकत्ता) २—जापानी राजदूत (कलकत्ता)

३—सिनेटर सर उ० थ्विन (बर्मा) ४—श्री हिरेन्द्रनाथ दत्त

५—श्री जे० चौधरी ६—भिक्षु सोरत स्थविर (लंका)

प्रधान मन्त्री और कोषाध्यक्ष

श्री देवप्रिय वलीसिंह

सहायक मन्त्री

१—सामणेर संघरत्न २—श्री विमलानन्द

× × × ×

—इस वर्ष पिछले साल से भी अधिक शहरों में और विशेष धूमधाम से वैशाख-महोत्सव मनाया गया। अनेक जगह वैशाख-पूर्णिमा की छुट्टी घोषित करने के लिए सरकार से अनुरोध किया गया।

—लंका की श्रीमती अनोरा जयसुरिय २५०) रु० महाबोधि सभा को दान देकर सभा की आजीवन सदस्या बनी हैं।

—महाबोधि विद्यालय (सारनाथ) को सरकार ने अँगरेजी मिडल स्कूल तक की स्थायी मंजूरी दे दी है।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, अगस्त बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४१ | अंक ५

बोधिद्रुम के कुछ पत्ते

जो मित्र शराब पीने में, असमय सैर करने में, रंग-रभस देखने में और जूआ खेलने में सहायक होता है उसे अमित्र जानना चाहिए।

× × × ×

जूआ खेलना, व्यभिचार करना, रंग-रभस करना, दिन में सोना, वेवक्त घूमना, बुरे आदमी से मित्रता करना और अत्यन्त कंजूसी करना मनुष्य का नाश कर देते हैं।

× × × ×

जो उद्योगी, निरालस, आपत्ति में न डिगनेवाला, अपने नियम का पक्का और मेधावी पुरुष है वह यश पाता है।

× × × ×

जो मनुष्य निद्राशील, खेल-तमाशा चाहनेवाला, प्रयत्न न करनेवाला, आलसी और क्रोधी है उसका पतन होता है।

—

केवल तीन नियम

(अनु०—श्री केशरीकुमार राय, एम० ए०)

'जागो, उठो और आन्तरिक शान्ति के लिए प्रयास करो।'

(उट्ठान सुत्तांत)

मनुष्य अपने चित्त को शुद्ध करके निर्मलता और पवित्रता के शिखर पर पहुँच सकता है। सब बुराइयों पर वह विजय प्राप्त कर सकता है। भगवान् बुद्ध के वचनामृत मनुष्य को उस पवित्रता तक पहुँचने में समर्थ बनाते हैं।

तथागत ने कहा है—'मैंने दो बातों की सच्चाई जान ली है, एक तो है अच्छे कर्मों से न थकना और दूसरे प्रयास में थककर कभी पीछे न हटना। बुद्धत्व को प्राप्त करने की इच्छा रखनेवाला मनुष्य न तो विषयों का दास बनता और न प्राण की ही परवाह करता है। मैंने बुद्ध का पद प्रयत्न करके ही पाया है। अगर तुम भी प्रयत्न करते रहोगे और पीछे न हटोगे तो इसी जीवन में स्वयं उस ज्ञान को प्राप्त कर लोगे जिसके लिए कितने ही कुलपुत्र घर-द्वार छोड़कर संन्यास लेते हैं।"

भगवान् बुद्ध ने हम मनुष्यों को वह मार्ग दिखाया है जिससे हम जीवन-मरण से मुक्त हो सकते हैं। हमें केवल अपने ही स्वभाव और गुण बदलने हैं। अपनी इच्छा को वशीभूत करना ही मनुष्य का परम कर्त्तव्य है। **तुम्हेहि किच्चं आतप्पं** "तुम्हें ही प्रयास करना होगा" यही भगवान ने हमेशा सिखाया।

उनकी इस शिक्षा से प्रभावित होकर कितने ही लोगों ने अपने बुरे कर्मों को सदा के लिए छोड़कर इस पवित्र मार्ग को अपनाया। अशोक और हर्ष के समान बड़े बड़े विजेताओं ने भी उनके मार्ग को अपनाकर तलवार के साम्राज्य की जगह पृथ्वी पर शान्ति का साम्राज्य स्थापित किया।

जो मनुष्य बुद्धत्व के लिए प्रयत्न करता है उसे उस प्रयत्न में ही आनन्द आता है। वह जरूरत भर ही बोलता है और प्राणिमात्र पर दया करता है। वह अहंभाव को छोड़ देता है; क्रोध और ईर्ष्या से कोसों दूर रहता है। वह किसी को नीच नहीं समझता, दोषियों से भी घृणा नहीं करता है।

× × × ×

एक समय, श्रावस्ती में भद्र कुल का एक युवक था। वह भगवान् की वाणी सुनकर प्रभावित हुआ और संघ की शरण जा प्रव्रज्या ग्रहण की। वह बहुत ही ईमानदार था और उसमें नैतिक लज्जा और भय भी पर्याप्त थे। उसके गुरुओं ने उस पर विनय के नियमों का इतना भार लाद दिया कि वह उनके बोझ से दब गया। उसने गुरु के निकट जाकर उनसे प्रार्थना की कि वह उन तमाम नियमों का पालन नहीं कर सकता। वह फिर से गृहस्थ होना चाहता है। उसने चीवर और पात्र उनको देकर अपने दोषों के लिए क्षमा माँगी।

गुरुजनों को उस पर दया आई और उन्होंने उसे जाने के पहले तथागत से मिलने के लिए कहा। वह भगवान् के पास गया। उन्होंने उसकी कठनाइयों को सुनकर

ढाढ़स दिया और कहा, "तुम इन नियमों से मत घबराओ। मैं तुम्हें केवल तीन ही नियम बताता हूँ। क्या तुम केवल तीन नियमों का पालन न कर सकोगे?" उसने कहा, 'हाँ!'

भगवान् ने कहा, "पुत्र, अब आगे केवल तीन नियमों का ध्यान रक्खो,—मन, वचन और कर्म इन तीनों से सचेत रहना। मन, वचन, और कर्म से कोई भी बुराई न करो।"

भगवान् की इस सीख के अनुसार चलने से वह बड़ा पवित्र और सिद्ध पुरुष हुआ।

"महाबोधि" से।

पुरिणका

(अनु०—श्री भगवतीप्रसाद चन्दोला)

[पुण्णिका का जन्म श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के कोषाध्यक्ष की एक दासी के गर्भ से हुआ था। उसने बुद्ध का प्रवचन सुना और गृहपति की अनुमति लेकर संघ में प्रवेश किया। आन्तरिक क्रमोन्नति के फलस्वरूप वह शीघ्र ही अर्हत् पद को प्राप्त हुई। अपनी आन्तरिक उपलब्धि के उल्लास में ही उस दासी पुत्री ने गाया है।]

पुरिणका—

"मैं पनिहारी जाड़े में भी
उतर नदी में जल भरती,
गृहस्वामिनी-दण्ड-भय-भीता
औ' निन्दा-भय से डरती।

किस भय से हे विप्र, कहो तुम
जल में सदा उतरते हो?
कम्पित देह तुम्हारी कैसी
जाड़े में यों मरते हो।"

ब्राह्मण—

"पूछ रही है ऐसा क्यों तू
जान-बूझ पुरिणके अरी!
करता हूँ मैं पुण्य-कर्म यों
पाप-कर्म कर नाश अरी!

चाहे वृद्ध, युवा हो चाहे,
पाप-कर्म जो भी करता;
जल में अवगाहन कर वह निज
पाप-कर्म को है हरता।"

पुरिणका —

"मूर्खों का भी मूर्ख कौन वह
जिसने तुम्हें बताया यह
जल में अवगाहन कर सचमुच
पाप धुलें—सम्भव क्या यह ?

स्वर्ग सभी जाते यों तब तो
मेढक औ' कछुए सारे,
साँप, मगर भी और अन्य सब
जलचर हैं जितने सारे।

भेड़, बकरियाँ, सूअर, मछली
औ' मृग जो मारा करते,
चोर-उचक्के, हत्यारे औ'
अन्य पाप जो हैं करते।
जल में अवगाहन कर वह सब
तो भव-सागर से तरते।

सचमुच ही यदि नदी तुम्हारे
पूर्व-पाप धो ले जाए,
धुलें पुण्य, औ' देह तुम्हारी
उघरी ही फिर रह जाए।

जिसके भय से विप्र अरे, तुम
जल में सदा उतरते हो,
उसे छोड़ दो—व्यर्थ शीत में
देह-दमन क्यों करते हो ?"

ब्राह्मण—

"लौटा लाई आर्य-मार्ग पर
तुम कुमार्ग से आज मुझे,
बदले में निज स्नान-वसन यह
देता हूँ उपहार तुझे।"

पुरिणका—

"अरे, वसन तुम मुझको मत दो
नहीं वसन की मुझको चाह,
यदि सच ही दुख से भय करते
यदि वह तुमको देता दाह,

तो मत करना पाप खुले में—
अथवा गोपन की ही राह।

सच ही पाप-कर्म करते हो, या
पहले हो किए कहीं,
आते देख भगो चाहे तुम,--
पर दुख से है छूट नहीं।

हो सचमुच दुख से भय करते,
हो यदि वह सच दुखदायी,
बुद्ध, धर्म औ' संघ शरण ही
तो हो सकती सुखदायी।
सादर पालन करो शील* का
होगा वह मंगलदायी।"

कपिलवस्तु में

(ले०—श्री देव)

उन दिनों भगवान् बुद्ध राजगृह में विहार कर रहे थे। किसी ने जाकर उनके पिता को इसकी खबर दी। राजा शुद्धोदन को अपने खोए रत्न का पता लग गया। वह उसे पाने को विह्वल हो उठा। उसने तुरन्त अपने मन्त्री को बुलाकर कहा—"अमात्य! तुम अपने साथ कुछ और आदमियों को लेकर अभी राजगृह जाओ और मेरे पुत्र से कहो कि तुम्हारे पिता तुम्हें देखना चाहते हैं।"

'अच्छा देव!' कहकर मन्त्री बहुत से आदमियों को साथ ले राजगृह की ओर चल पड़ा। जिस समय ये लोग वहाँ पहुँचे उस समय भगवान् एक विराट सभा में धर्मोपदेश दे रहे थे। भगवान् का उपदेश सुन उनके मन में भी वैराग्य उत्पन्न हुआ और वे सब के सब बिना राजा का सन्देस कहे ही भिक्षु हो गए।

काफी दिन बीत गए। अभी तक राजा का भेजा हुआ मन्त्री लौटा नहीं। अन्त में एक दिन राजा ने दूसरे मन्त्री को बहुत से आदमियों के साथ भगवान् को बुलाने के लिए भेजा, किन्तु वे सब भी भगवान् के पास जा भिक्षु हो गए।

---

* शील के अंग ये हैं—(१ हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) व्यभिचार न करना, (४) मिथ्या भाषण न करना और (५) मादक द्रव्यों का सेवन न करना।

एक दिन राजा ने कालउदायी को बुलाकर कहा, "तात ! मैं अपने पुत्र को देखना चाहता हूँ। हजारों आदमियों को भेजा, किन्तु एक भी उनमें से वापस नहीं लौटा। इस शरीर का कोई ठौर ठिकाना नहीं। कौन जाने कब क्या होगा। मैं जीते जी अपने पुत्र को देख लेना चाहता हूँ। क्या तुम मेरे पुत्र को मुझे दिखा सकोगे ?"

"देव ! सकूँगा, यदि आप मुझे संन्यास लेने की आज्ञा दें।"

"तात ! तुम संन्यासी होओ या नहीं, किन्तु मुझे मेरे पुत्र का दर्शन अवश्य कराओ।"

'अच्छा देव !' कह राजगृह में जहाँ भगवान् उपदेश दे रहे थे, पहुँचा। भगवान् का उपदेश सुन वह भी भिक्षु हो गया।

कुछ दिनों के बाद उदायी ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! आपके पिता आपको देखना चाहते हैं। आप चलकर उनको दर्शन दें भन्ते ! इस समय न बहुत जाड़ा है न बहुत गर्मी।"

"अच्छा उदायी ! मैं चलूँगा।"

इस प्रकार भगवान् हजारों भिक्षुओं के साथ दो मास में राह तय कर कपिलवस्तु पहुँचे। दूसरे दिन भगवान् हाथ में पात्र ले भिक्षा माँगने शहर गए। भगवान् को भिक्षा माँगते देख सारे शहर में शोर मच गया। जहाँ-तहाँ खिड़कियों से, छतों से लोग देखने लगे।

यशोधरा के हृदय पर इस घटना ने वज्राघात के समान चोट पहुँचाई। जो कभी इसी नगर का अधिपति था, राजसी ठाठ-बाट से सोने के रथ पर घूमता था, वही आज हाथ में खप्पर लिये द्वार-द्वार भिक्षा माँग रहा है। यशोधरा का सन्तप्त हृदय इसको सहन नहीं कर सका। वह राजा से बोली, "आपका प्रिय पुत्र शहर में भिक्षा माँग रहा है।"

राजा शुद्धोदन इसे सुनते ही घबड़ा गया। वह हाथ से धोती सँभालते, जल्दी-जल्दी निकलकर भगवान् के पास जा बोला, "भन्ते ! मुझे लजवाते क्यों हो ? क्या इतने भिक्षुओं के लिए हमारे पास भोजन नहीं ?"

"महाराज ! हमारे वंश का यही कायदा है।"

"भन्ते ! हम लोगों का वंश क्षत्रियवंश है ! क्षत्रिय कभी भिक्षा नहीं माँगते।"

यह कहकर राजा ने भिक्षुसंघ सहित भगवान् को राजमहल में ले जाकर भोजन करवाया। इस अवसर पर यशोधरा को छोड़ सभी ने आकर भगवान् की वन्दना की। यशोधरा ने कहा, "यदि मुझमें गुण है तो स्वयं आर्यपुत्र मेरे पास आवेंगे। आने पर ही मैं वन्दना करूँगी।"

भगवान् यह बात जान अपने दो शिष्यों और राजा के साथ राजकुमारी यशोधरा के शयनागार में गए। यशोधरा ने भगवान् के पैरों पर सिर रखकर उनकी वन्दना की। उस समय राजा ने भगवान् से कहा, "भन्ते ! मेरी बेटी भी आपके संन्यासी होने की बात सुनकर संन्यासिनी हो गई है। आपके एक बार भोजन करने की बात सुनकर यह भी एक ही बार खाती है। आप ही की तरह यह भी कठिन जीवन व्यतीत करती है।"

तदन्तर भगवान् यशोधरा को उपदेश दे चले गए।

माँ बौ या प्रति पुत्र या कर्त्तव्य

(अनु०—एक धर्म-प्रेमी)

हे गृहपति-पुत्र ! थ्व खुगू दिशा यात: (थुगु प्रकारं) भालप्ये माल—गथे धासा—"अमिसं जित: लहिनातल, आ: जिनं अमित: भरण-पोषण याये। अमिगु ज्यानं याये। कुलवंश यात: स्थिरं तये। मा:मा:गु सम्पादन याये। अथवा थुगु लोक तोता वने धुं:क: विं मृत माँ बौ पिनि या निम्तिं दान याये।" थका थुगु प्रकारं ....माता-पिता पिनिगु सेवा याय् मा: ॥

पुत्र या प्रति माँ-बौ पिनि कर्त्तव्य

थुगु प्रकारं न्याताप्रकारं पुत्रं सेवित माँ-बौ पिसं पुत्र या उपरे अनुकम्पा याई। गथे धासा—पापं बचेयाना बियू, कल्याण वा पुण्य कर्म याकई, विद्यादि या शिक्षा बियू, योग्य कन्या विवाह याना बियू, हानं ठीकगु समये सम्पत्ति ल:ल्हाना बियू।......थुगु प्रकार वं पुत्र यागु पूर्वदिशा, रक्षित, क्षेमयुक्त, भयरहित जुई।

आचार्य्य या प्रति शिष्य या कर्त्तव्य

हे गृहपति-पुत्र ! शिष्यं थ:म्ह गुरु रूपी दक्षिण दिशा यागु न्याता प्रकारं सेवा याय् मा:।—दुक्खसिया, आदर सहित सेवा यासे, उपदेश बांलाक न्यँसे परिचर्या यासे वो आदर याना विद्या ब्वना (सेवा याय्‌गु)।

शिष्य या प्रति आचार्य्य या कर्त्तव्य

हे गृहपति-पुत्र ! न्याता प्रकारं सेवा याका च्वंम्ह: आचार्य्य रूपी दक्षिण दिशां थ:म्ह शिष्य यात: न्याता प्रकारं दया याई—सुविनित वा विनय सेना बियू। सुग्राह्य शास्त्र सेना बियू। दयाच्वक विद्या वो श्रुति आदि सेना बियू। हित मित्र-प्रतिपादन याई, हानं फुक दिशा स परित्राण याई।......हे गृहपति-पुत्र ! .....आचार्य्य थ:म्ह शिष्य यात: रक्षा याई। थुगु प्रकारं दक्षिण दिशा-स्वरूप आचार्य्य द्वारा शिष्य सुरक्षित जुई हानं कुशल क्षेम जुया च्वनी।

स्त्री या प्रति पति या कर्त्तव्य वो पति या प्रति पत्नि या कर्त्तव्य

हे गृहपति-पुत्र ! स्वामीं (पतिं) पश्चिम दिशा स्वरूप भार्य्या (मिसा) यागु सेवा याय् मा:।—सन्मान यासे, अपमान मयासें, व्यभिचारी मजु सें, ऐश्वर्य्य (धन) जिम्मा बिया, हानं अलङ्कार (तिसा) बिया (सेवा याय्‌गु)।

हे गृहपति-पुत्र ! थुगु न्याता प्रकारं पतिद्वारा सेवा याका चोंम्ह पश्चिम दिशा रूपी पत्निं न्याताप्रकारं स्वामी या प्रति अनुकम्पा (दया) याई। ज्या खें सुप्रबन्ध

जुई (=गृह यागु ज्या खें बांलाक इन्तजाम याई)। नोकर परिजन वा सुसहायक परिवार पिं:नं वशेच्वनी। पर पुरूष वो नाप संभोग याईमखु। अतिकं दुक्ख सिया कमाई याना ह:गु धन दौलत यात सुरक्षित याना तयू। थ:म्ह पति यागु दयाच्वक ज्याखें आलस्य त्याग याना सर्वदा होसियारी वा चलाकी जुया च्वनी।.........

सत्य मित्र या प्रति कुलीन पुत्र या कर्त्तव्य

हे गृहपति-पुत्र ! धात्थें नं कुलीन पुत्रं 'मित्र यागु सहायतां हे दुक्ख तरे याना ब्यूगु या निम्तिं' उत्तर दिशा-स्वरूप मित्र पिनिगु न्याता प्रकारं प्रत्युत्पालन (सेवा) यायूमा: ।--दान द्वारा, प्रिय वचन द्वारा, अर्थचर्य्या द्वारा, समानता (= दुक्ख सुखे बराबर सोईम्ह ज्वीगु) द्वारा वो सत्यवचन वा सत्यता द्वारा (विश्वास बिया) प्रत्युत्पालन यायूगु।

कुलीन पुत्र या प्रति सत्य मित्रया कर्त्तव्य

हे गृहपति-पुत्र ! धात्थेंनं कुलीन पुत्रं न्याताप्रकारं सेवा याका चोंम्ह उत्तरदिशा रूपी सत्य वा हित-मित्रं कुलीन पुत्र यात: न्याताप्रकारं रक्षा (अनुकम्पा) याई। गथे धासा--

"भूल ज्वीगुली रक्षा यायू, प्रमाद-विशिष्ट पुरूष यात: धन रक्षा याना बियू, भयभीत ज्वीबले शरण कायू, आपत्ति-विपत्ति बले तोता विश्यु वनी मखु, हान उम्ह कुलीन पुत्र या पुत्रपौत्रादि पिनिगुनं प्रतिपूजन सेवा यायू।...............०।

नौकर वो मालिक या कर्त्तव्य

हे गृहपति-पुत्र ! मालिकं अधोदिशा या समानं दास वो नोकर पिन्त: न्याता प्रकारं प्रत्युत्पालना यायूगु।--यथाशक्ति ज्याखँ यागु प्रबन्ध यायूगु, भोजनादि नयगु चीज वो तलब बियगु, रोगी ज्वीबले मदद बिया स्वादिष्ट रस आदि इनानंकगु, बेला बखते बिदा बिया पालन यायूगु।

.........०! नोकर नं मालिक या सिनं न्हापालाक दनीम्ह जुई, दकेसिवे लिपा देनीम्ह जुई, मालिकं ब्यूगु धन फयाकाईम्ह जुई, मालिक यागु ज्या बांलाकयाईम्ह जुई, हानं मालिक यागु यश कीर्ति फैले याईम्ह जुई (सदानं थ:म्ह मालिक यात: त:धंका खँ ल्हाईम्ह जुई)।

आसा दुकि **धर्म-दूत** चले ज्वीगु नेपाल पाठक महासय पिनिगु द्वारं अपालं साहिता दैधेगु आसादु। **धर्म-दूत** पत्रिकाय **नेवा** भासं धर्मयागु सन्देश पत्र पु २ नं निस्यं पु ४ तक चोना वय फै गुं दाताया इच्छा दैवन धासा बधेनंज्वी फै।

— —

क्या सिक्ख हिन्दू नहीं ?

२० मई १६४१ के हिन्दू महासभा के मुख्य पत्र 'हिन्दू' के दूसरे पेज पर **'यू० पी० में सिक्खों की बाढ़'** शीर्षक एक नोट छपा है। इस नोट का एक अंश इस प्रकार है, "भारतीय संस्कृति और सभ्यता पर यदि ईसाई या मुसलमानों की ओर से आक्रमण होता है तो उसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं; क्योंकि ये दोनों सभ्यताएँ नितान्त विदेशी और विरोधात्मक हैं। परन्तु हमारे दुःख और आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता जब कि हमको मिटाने के लिए हमारे ही भाई तैयारियाँ कर रहे हैं। २४ या २५ मार्च को यह पढ़कर महान् आश्चर्य हुआ कि अलीगढ़ जिले में २७ हजार मनुष्य सिक्ख मत में प्रवेश कर रहे हैं। जून महीने में जहाँ सिक्खों की एक कान्फ्रेंस हो रही है; यह सब स्वांग उसी अवसर पर खेला जायगा। **जितने लोग सिक्ख बन जायँगे वे उतने ही हिन्दुओं के विरोधी बनकर भारत माता की समस्याओं को और पेचीदा बना देंगे।** (मैं) हैदराबाद के विजयी योद्धाओं से एक बार अपील करूँगा कि वे अपने ऊपर होनेवाले आक्रमण का फिर एक बार वीरता से मुकाबिला करें। मैं अलीगढ़ जिले के समस्त आर्यसमाजों, आर्यप्रतिनिधिनेताओं से प्रार्थना करता हूँ कि वे इस नई बला का मुस्तैदी के साथ मुकाबिला करें। एक समय तो वह था जब स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने हजारों सिक्खों को वैदिक धर्म में दीक्षित किया था। आज दुर्भाग्यवश यह सुनने में आ रहा है कि हिन्दू सिक्ख बनने जा रहे हैं।"

ऊपर के उद्धरण से हिन्दू धर्म के प्रचारकों की मनोवृत्ति स्पष्ट हो जाती है। इन धर्माध्यक्षों की राय में (१) सिक्ख हिन्दू धर्म के अन्तर्गत नहीं हैं; (२) जितने लोग सिक्ख बन जायँगे वे हिन्दुओं के (केवल हिन्दू धर्म के ही नहीं) विरोधी बन जायँगे; (३) भारत को गुलामी से मुक्त करने में सिक्ख बाधक होंगे। (४) हिन्दुओं की दृष्टि में सिक्ख और मुसलमान समान हैं। **जब सिक्खों की यह हालत है तो बौद्धों का क्या कहना!**

स्वर्णजयन्ती समिति को और दान

महाबोधिसभा की स्वर्ण-जयन्ती समिति के निम्न सदस्य और बने—श्री पीटर बूक (संयुक्तराष्ट्र अमेरिका) १०० रु०; डा० एम० वेंकट राव (बम्बई) १०० रु०; डा० जी० एस० अरनाल्ड, प्रेसिडेंट थियोसोफिकल सोसाइटी (मद्रास) १०० रु०; श्रीमती तान् कोक की (पेनांग) १०० रु०; विदर्भरञ्जन बरूआ १० रु०; प्रिन्सिपल एफ० जी० पीयर्स १२ रु०; जयवर्द्धन (एडवोकेट, कोलम्बो) १० रु०; श्री जमसेद नसेरवाँ जी (कराँची) २० रु०; प्रो० सेलेश्वर सेन (विजगापट्टम) १० रु०; पी० वी० आर० आर० दीक्षित (मद्रास) १० रु०; श्री एस० एन० मोदक आइ० सी० एस० (कलकत्ता) १० रु०; श्री एस० आर० धद्दा (कलकत्ता) १० रु०; सर जोगेन्द्र सिंह के० टी० (शिमला) १० रु०; मुदालियर आर० मलालगोदा (कोलम्बो) १० रु०; डा० के० पी० सुब्राह्मनियम (विजयनगरम्) १० रु०; श्री पी० एस० दुवाश (कराँची) १० रु०; श्री पी० नरसिंह (त्रिवन्द्रम) १० रु०।

सिर्फ चार आने में 'धम्मपद'

पाकेट साइज **सुंदर छपाई** **बढ़िया जिल्द**

बौद्ध-साहित्य के प्रेमियों को धम्मपद का परिचय कराने की आवश्यकता नहीं। आज तक इसके जितने अनुवाद संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में हुए हैं, उतने किसी बौद्ध ग्रंथ के नहीं; इसका कारण है धम्मपद की सर्वोपयोगिता। संसार के सभी मत-मतांतरों के अनुयायियों के लिए यदि कोई एक पुस्तक **धर्म-पुस्तक** हो सकती है, तो वह धम्मपद है। किसी भी आदमी को बिना किसी की सहायता के समझ में आनेवाली यदि कोई धर्म-पुस्तक है तो वह **धम्मपद** है। **ऐसे उपयोगी ग्रंथ के लिए आप सिर्फ चार आने के टिकट भेज दीजिए और घर बैठे आपको धम्मपद मिल जायगा।**

बौद्ध-साहित्य के कुछ अन्य ग्रंथ

मज्झिम निकाय	६)	पालि महाव्याकरण	५)
विनयपिटक	६)	बुद्ध-वचन	।=)
दीघ निकाय	५)	उदान	१)
बुद्धचर्य्या	५)	तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध और उनके अनुचर	१)	बुद्ध (हिन्दी और उर्दू)	–)
भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)	बोधि-द्रुम	।)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	–)	पूजा व भावना (नेवारी)	=)

मिलिन्द प्रश्न

बौद्धधर्म के अध्ययन करनेवालों के मन में जिस प्रकार की शंकाएँ उठती हैं, कुछ वैसी ही शंकाएँ आज से कोई दो हजार वर्ष पहले ग्रीस (यवन) देश के एक राजा मिनाण्डर (मिलिन्द) के मन में उठी थीं। इस ग्रंथ में महास्थविर नागसेन और राजा मिनाण्डर के बीच हुए तर्कों को प्रश्नोत्तर के रूप में रखा गया है। बौद्ध-धर्म को जानने के लिए यह बहुत ही उपयोगी पुस्तक है। इसके हिन्दी अनुवाद में आपको मूल पाली का ही रस मिलेगा। पृष्ठ-संख्या ६००, छपाई बँधाई सुन्दर। फिर भी दाम सिर्फ ३॥)।

पता :—**बर्मी विहार**; सारनाथ (बनारस)

सब प्रकार के बौद्ध साहित्य के लिए लिखिए :—

महाबोधि पुस्तक भण्डार, सारनाथ (बनारस)।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धर्म-दूत
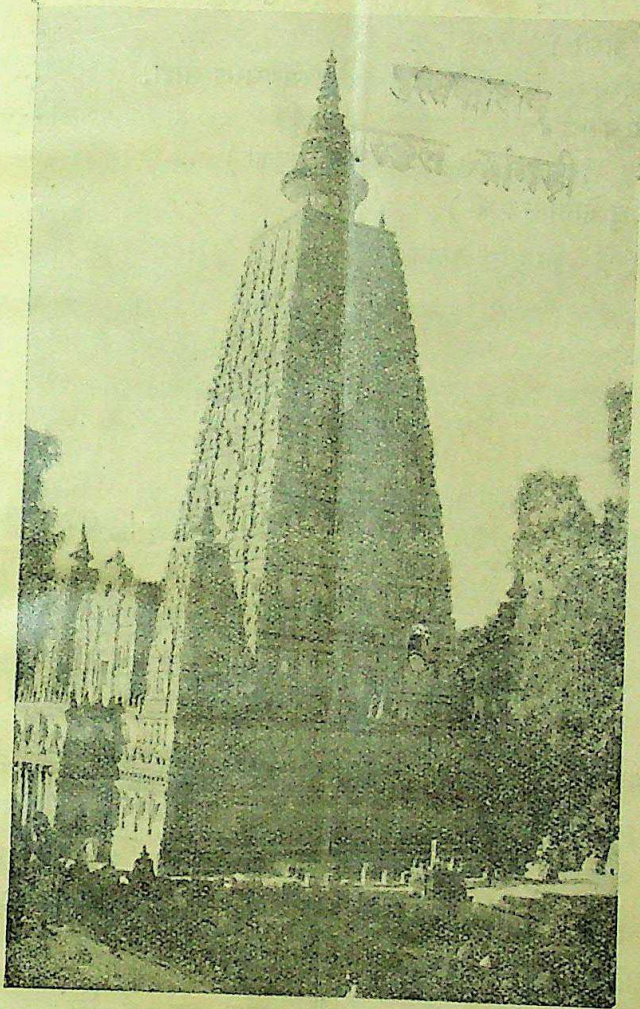
उस बुद्धगया में जहाँ तथागत ने बुद्धत्व प्राप्त किया था २४ दिसम्बर को महाबोधि सभा की स्वर्ण जयन्ती मनाई जायगी।

वर्ष ६
अंक ६
सं० ६७

अग्रहण बु० सं० २४८५
वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
एक प्रति का –)

विषय-सूची

स्वागत

भाई सङ्घरतन तथा बुद्ध प्रिय जी का

महाबोधि सभा के सहायक मन्त्री भाई सङ्घरतन जी जो अस्वस्थ होने के कारण कुछ वर्ष पूर्व अपनी मातृभूमि (सिंहल) चले गये थे, वे अब सारनाथ लौट आये हैं। आपके आने से सारनाथ में नया जीवन आ गया है। त्रिरत्नानुभाव से आप चिरंजीवी हों। मूलगन्ध कुटी विहार-पुस्तकालय के योग्य पुस्तकाध्यक्ष श्री बुद्धप्रिय जी भी प्रायः एक वर्ष सिंहल में रह कर सकुशल सारनाथ लौट आए हैं।

धर्मदूत परिवार आप दोनों का हार्दिक स्वागत करता है।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, दिसम्बर बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४१ | अंक ९

यशोधरा-विलाप

(अनु० श्री सूर्यनारायण चौधरी एम० ए०)

[यह अंश महाकवि अश्वघोषकृत बुद्धचरित के आठवें सर्ग—अन्तःपुर-विलाप—से लिया गया है। राजकुमार सिद्धार्थ अपनी धर्मपत्नी यशोधरा और पुत्र राहुल को सोये छोड़ ज्ञान-प्राप्ति के लिए निकल पड़ते हैं। खाली घोड़ा लेकर छन्दक लौट आता है। कुमार को न पा राजमहल में कुहराम मच जाता है। कवि ने इस अवसर पर यशोधरा के विलाप का बड़ा ही कारुणिक चित्र खींचा है।]

स मामनाथां सहधर्मचारिणी-
मपास्य धर्मं यदि कर्तुमिच्छति।
कुतोऽस्य धर्मः सहधर्मचारिणीं
विना तपो यः परिभोक्तुमिच्छति ॥६१॥

मुझ अनाथ सहधर्मचारिणी को छोड़कर यदि वह धर्म करना चाहते हैं, तो उन्हें धर्म कहाँ से (होगा) जो वह सहधर्मचारिणी के बिना तपस्या करना चाहते हैं।

शृणोति नूनं स न पूर्वपार्थिवा-
न्महासुदर्शप्रभृतीन् पितामहान् ।
वनानि पत्नीसहितानुपेयुष-
स्तथा हि धर्मं मदृते चिकीर्षति ॥ ६२ ॥

अवश्य ही उन्होंने प्राचीन राजाओं महासुदर्श आदि पितामहों के बारे में नहीं सुना है, जो पत्नी-सहित वन गये थे; क्योंकि वह मेरे बिना ही धर्म करना चाहते हैं।

मखेषु वा वेदविधानसंस्कृतौ
न दंपती पश्यति दीक्षिताबुभौ ।
समं बुभुक्षू परतोऽपि तत्फलं
ततोऽस्य जातो मयि धर्ममत्सरः ॥ ६३ ॥

या वह यह नहीं देख रहे हैं कि यज्ञों में वेद-विधान के अनुसार संस्कृत तथा दीक्षित होकर उभय दम्पती परलोक में भी यज्ञफल का साथ ही उपभोग करना चाहते हैं; अतः मेरे से उन्हें धर्म-द्वेष हो गया है।

ध्रुवं स जानन्मम धर्मवल्लभो
मनः प्रियेऽप्याकलहं मुहुर्मिथः ।
सुखं विभीर्मामपहाय रोषणां
महेन्द्रलोकेऽप्सरसो जिघृक्षति ॥ ६४ ॥

निश्चय ही वह धर्म-वल्लभ मेरे मन को एकान्त में बार-बार ईर्ष्यालु और कलह-प्रिय जानकर सुख (न होने) के डर से मुझ कोपशीला को छोड़कर इन्द्र-लोक में अप्सराओं को पाना चाहते हैं।

इयं तु चिन्ता मम कीदृशं नुता
वपुर्गुणं बिभ्रति तत्र योषितः ।
वने यदर्थं स तपांसि तप्यते
श्रियं च हित्वा मम भक्तिमेव च । ६५ ॥

मेरी यही चिन्ता है कि वहाँ वे स्त्रियाँ कैसा रूप-गुण धारण करती हैं, जिसके लिए मेरी श्री और भक्ति को छोड़कर वह वन में तप कर रहे हैं।

न खल्वियं स्वर्गसुखाय मे स्पृहा
न तज्जनस्यात्मवतोऽपि दुर्लभम् ।
स तु प्रियो मामिह वा परत्र वा
कथं न जह्यादिति मे मनोरथः ॥ ६६ ॥

निश्चय ही मेरी यह इच्छा स्वर्ग-सुख के लिए नहीं है, वह (सुख) आत्मवान जन (संयतात्मा) के लिए दुर्लभ नहीं, किन्तु वह प्रिय इस लोक या परलोक में मुझे किसी तरह भी न छोड़ें, यही मेरा मनोरथ है।

अभागिनी यद्यहमायतेक्षणं
शुचिस्मितं भर्तुरुदीक्षितुं मुखम्।
न मन्दभाग्योऽर्हति राहुलोऽप्ययं
कदाचिदङ्के परिवर्तितुं पितुः ॥ ६७ ॥

यदि स्वामी के दीर्घ आँखों और पवित्र मुसकानवाले मुख को देखना मेरे भाग्य में नहीं है, तो क्या यह मन्द-भाग्य राहुल भी पिता की गोद में लोटने योग्य नहीं ?

अहो नृशंसं सुकुमारवर्चसः सुदारुणं तस्य मनस्विनो मनः।
कलप्रलापं द्विषतोऽपि हर्षणं शिशुं सुतं यस्त्यजतीदृशं स्वतः ॥ ६८ ॥

अहो ! सुकुमार रूपवाले उस मनस्वी का मन कठोर और अति दारुण है, जो शत्रुओं को भी हरषानेवाले, तुतलाते हुए ऐसे सुत को स्वयं छोड़ रहे हैं।

ममापि कामं हृदयं सुदारुणं शिलामयं वाप्ययसाऽपि वा कृतम्।
अनाथवच्छ्रीरहिते सुखोचिते वनं गते भर्तरि यन्न दीर्यते ॥६९॥

मेरा भी हृदय अति दारुण है, पत्थर का बना है या लोहे का भी, जो सुख भोगने योग्य स्वामी के श्री-रहित होकर अनाथ के समान वन जाने पर भी विदीर्ण नहीं हो रहा है।

गृहस्थों के लिए भगवान् बुद्ध की शिक्षा

(श्री० शिवशङ्कर पाण्डेय, महाबोधि विद्यालय, ८ वीं श्रेणी)

भगवान् बुद्ध ने मानव समाज को सच्चे मार्ग की ओर लगाया। उन्होंने कहा—कोई आदमी पाप कर्म करके कभी अपनी उन्नति नहीं कर सकता। राग, द्वेष, भय और मोह के वशीभूत होकर धर्म का उल्लंघन करनेवालों का जीवन कभी सफल नहीं होता।

सच्चरित्रता को भगवान् बुद्ध ने बहुत महत्त्व दिया। उनकी राय में हृदय की पवित्रता उन्नति का मूल स्रोत है, उन्होंने इसी लिए अपने प्रथम उपदेश में कहा था—"भिक्षुओ ! दो अन्तों में नहीं जाना चाहिए। जैसे (१) काम-वासनाओं में लिप्त रहना और (२) पाप से छुटकारा पाने के लिए शरीर को अत्यधिक तपाना।" यदि विचार किया जाय तो भगवान् के वचन न केवल भिक्षुओं के लिए वरन् प्राणिमात्र के लिए एक समान हितकर हैं।

मनुष्य जीवन का उद्देश भोगों में लिप्त रहना नहीं है और न तो ऐसा ही समझना उचित है कि जीवन की पवित्रता शारीरिक कष्ट सहन करने में ही है। भगवान् ने परम-शान्ति निर्वाण प्राप्ति के लिए यह अष्टांगिक मार्ग बतलाया है सम्यक् दृष्टि, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक् वाणी, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि।

चाहे हम कोई भी पेशा करें, कहीं भी रहें, जीवन को सुखी बनाने के लिए भगवान् ने हमें ऊपर कथित सुन्दर और सुगम आठ बातें बतलाई हैं। यदि हमारा विचार ही उचित न हो, यदि हमारा सङ्कल्प ही उचित न हो तो फिर हम इस संसार में सुखी जीवन की आशा कैसे कर सकते हैं। इसी प्रकार यदि हम अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए न्याय-युक्त प्रयत्न न करें, यदि हमारा पेशा पवित्र न हो, यदि हम अपने किये कर्मों की अच्छाई-बुराई का विचार नहीं कर सकें, यदि हम आपत्ति-विपत्ति, सुख-दुःख सभी अवस्था में अपने चित्त को एकाग्र नहीं रख सकें तो हमारा जीवन बालू की भाँति है।

एक गृहस्थ का जीवन सुख-दुःख का जीवन होता है। उसको सदा समाज के निकटतम सम्पर्क में रहना पड़ता है। सात्विकता की अगर कहीं जरूरत है तो गृहस्थ जीवन में ही। भगवान् बुद्ध ने इस बात को अच्छी तरह समझा था, इसी लिए उन्होंने कहा—"माता-पिता की सेवा करना, पुत्र, स्त्री आदि का भरण-पोषण करना, किसी काम के करने में आतुर न होना ये उत्तम मङ्गल हैं। पापों से बचना, मदिरा न पीना और उत्तम कार्य करने में आलस न करना ये उत्तम मङ्गल हैं क्योंकि जो वृद्ध माता-पिता की सेवा नहीं करता, कुटुम्ब-परिवार का भरण-पोषण नहीं करता उसका निश्चय ही पतन होता है।....."

भगवान् बुद्ध ने साधारणतया गृहस्थों के लिए पञ्चशील और भिक्षुओं के लिए दश शील का विधान किया है। पञ्चशील इस प्रकार हैं:—

(१) जीव-हिंसा न करना, (२) चोरी न करना, (३) व्यभिचार न करना, (४) झूठ न बोलना, (५) शराब आदि नशीली चीज़ों का इस्तेमाल न करना।

केवल ये पंचशील ही ऐसी शिक्षाएँ हैं, जिनके द्वारा इसी पृथ्वी पर कोई भी व्यक्ति देवलोक स्थापित कर सकता है। किसी की हत्या करके, किसी का धन चुराकर, झूठ बोलकर, पर-स्त्री को बुरी निगाह से देखकर, नशे से उन्मत्त होकर न इस लोक में न पर लोक में ही हम सच्चा सुख और शान्ति पा सकते हैं। यह शिक्षाएँ गृहस्थ-जीवन की रीढ़ हैं। इन्हीं पर एक पवित्र और सुखमय गृहस्थ-जीवन का विमल आदर्श निर्भर है।

जिस समाज में हम रहते हैं उसके सामञ्जस्य के लिए परस्पर का प्रेम, सद्भावना और सहानुभूति एवं सहयोग आवश्यक हैं। भगवान् ने हमें केवल मनुष्य मात्र से ही इस प्रकार का पवित्र सम्बन्ध रखने का उपदेश नहीं दिया है; बल्कि उन्होंने कहा है—"जिस प्रकार जिस प्रेम से कोई माता अपने इकलौते पुत्र को रखती है उसी असीम स्नेह के साथ सभी प्राणियों के प्रति मैत्री भाव रखना चाहिए।"

यह विश्व-प्रेम, यह हृदय-हृदय का स्नेह और यह परस्पर की मङ्गल-कामना सृष्टि के अन्त तक चिर और सत्य रहेगा। जब तक संसार में एक भी प्राणी जीवित रहेगा, तब तक मैत्री का यह श्रेष्ठतम आदर्श अनुकरणीय रहेगा।

मनुष्य अपनी पैदाइश के साथ कोई गुण-अवगुण, यश-अयश लेकर नहीं आता। हम अपने कर्म से ही गुणी और निर्गुणी बनते हैं किन्तु हमारे समाज में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपने व्यक्तिगत स्वार्थ और झूठे बड़प्पन के लिए दूसरे को हीन बतलाते हैं, यद्यपि ऐसे लोगों में हीनता और क्षुद्रता कूट-कूटकर भरी रहती है। फिर भी सैकड़ों वर्षों से

चली आती हुई रूढ़ि के कारण समाज की भोली-भाली जनता उन्हें बड़प्पन देती है। भगवान् की दृष्टि में न कोई ऊँचा है न नीचा। कर्म ही से मनुष्य उच्चता को प्राप्त करता है और कर्म ही से नोचता को। धम्मपद में भगवान् ने कहा है :—

"न जटाहि न गोत्तेहि न जच्चा होति ब्राह्मणा।
यम्हि सच्चञ्च धम्मो च सो सुचि सो च ब्राह्मणा।।"

अर्थात् न जटा से, न गोत्र से, न जन्म से कोई ब्राह्मण होता है; जिसमें सत्य है, धर्म है, वही व्यक्ति पवित्र है और वही ब्राह्मण है।

बौद्ध धर्म के अध्ययन के कुछ साधन

(श्री विमलचरण लाहा, एम० ए०, पी-एच० डी०)

एशिया और युरोप के बहुत से विद्वान् आज बौद्ध धर्म और बौद्ध विचारों के अध्ययन में लगे हैं। यह हम भारतीयों के लिए उत्साहवर्द्धक एवं प्रसन्नता की बात है। बौद्ध धर्म सम्पूर्ण भारत में ही नहीं बल्कि बहुत दूर-दूर तक—मध्य एशिया, तिब्बत, चीन, जापान, स्याम, जावा, बर्मा और लङ्का में फैल गया। सचमुच बौद्ध भारत ही बृहत्तर भारत है। इसके महत्त्व के बारे में बहुत कुछ कहा जा चुका है। इसलिए मैं यहाँ बौद्ध धर्म के अध्ययन के लिए आवश्यक मूल आधारों के बारे में ही कुछ कहूँगा। बौद्धधर्म की थेरवाद शाखा के मूल सिद्धान्त पालित्रिपिटक में मिलते हैं। पालित्रिपिटक बौद्धधर्म की इस शाखा के अध्ययन के लिए परमावश्यक ग्रंथ है। उनसे बौद्ध कालीन भारत की राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक व्यवस्था पर बहुत अच्छा प्रकाश पड़ता है।

विलायत की पाली टेक्स्ट सोसाइटी और खासकर श्रीमान् और श्रीमती रीसडेविड्स के अकथनीय परिश्रम के लिए हम लोगों को कृतज्ञ रहना होगा। इस सोसाइटी ने लगभग सभी पाली मूल ग्रंथों और उनकी अट्ठकथाओं (टीकाओं) को रोमन लिपि में प्रकाशित किया है। इसके अलावा यूरोप की और भी बौद्ध सभाओं ने—जैसे जर्मन पाली टेक्स्ट सोसाइटी, अमेरिकन बुद्धिस्ट सोसाइटी, कोपेनहेगेन बुद्धिस्ट सोसाइटी इत्यादि ने—इस काम में हाथ बँटाया है। इस सिलसिले में हमको उन भारतवर्षीय, सिंहली, बर्मी और स्यामी विद्वानों को नहीं भूल जाना चाहिए जिन्होंने थेरवाद (हीनयान) शाखा पर प्रामाणिक ग्रन्थ लिखे हैं।

बौद्धधर्म के सर्वांगीन अध्ययन के लिए महायान सूत्रों का ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है। महायान ग्रन्थों में प्रसिद्ध हैं—वसुबन्धु का अभिधर्मकोष, नागार्जुन की माध्यमिका कारिका और लङ्कावतार सूत्र; असङ्ग का सूत्रालङ्कार, अश्वघोष का बुद्धचरित और सौन्दरानन्द काव्य; शांतिदेव का बोधिचर्य्यावतार और शिक्षासमुच्चय, ललितविस्तर, महावस्तु और दिव्यावदान। योरोपीय, भारतीय और जापानी विद्वानों ने महायान शाखा के अध्ययन में काफी परिश्रम किया है। इस सिलसिले में हम लोगों को

दो भारतीय विद्वान् श्री राजेन्द्रलाल मित्र और श्री हरप्रसाद शास्त्री का नाम याद रखना होगा। इन लोगों ने अपना जीवन ही महायान बौद्ध धर्म के अध्ययन में लगा दिया। बौद्धधर्म की कुछ समस्याओं को हल करने में जैनियों के 'आगम' भी सहायक होते हैं।

तिब्बती बौद्धधर्म के अध्ययन के लिए तिब्बत के तीन ग्रन्थों की शरण लेनी पड़ती है—(१) तिब्बती 'दुल्व' जिसमें सिर्फ विनय (भिक्षुओं के नियम-ग्रन्थ) ही नहीं बल्कि जातक कथाएँ, अवदान, उदान और व्याकरण सभी शामिल हैं। (२) 'सो-सोर-थार-पा' मूल सर्वास्तिवादी शाखा के ग्रन्थ प्रातिमोक्ष का तिब्बती रूप है। (३) प्रसिद्ध तिब्बती संग्रह कन-जुर (= बुद्ध-वचन-अनुवाद) और तन-जुर (= शास्त्र अनुवाद)।

चीनी बौद्धधर्म के लिए प्रामाणिक ग्रंथ हुनियो नानंजियो की चीनी त्रिपिटक की सूची सभी चीनी बौद्धधर्म के विद्यार्थी के हाथ में होनी चाहिए। जापान में भी महायान शाखा का ही प्रभाव है।

बौद्धधर्म को पूरा पूरा समझने के लिए हम लोगों को सिक्कों, शिलालेखों, मूर्तियों और बौद्ध वास्तुकला को छोड़ना नहीं चाहिए। तान्त्रिक ग्रन्थों में भी बौद्धधर्म का समावेश है।

———

जापान के बौद्ध सम्प्रदाय

(श्रीमती सुजुकी)

[सुदूर पूर्व में पहले पहल भारतीय बौद्ध विद्वानों ने चीन में अपने धर्म और साहित्य का प्रचार किया। धीरे धीरे थोड़े ही समय में विशाल चीन साम्राज्य के एक कोने से दूसरे कोने तक बौद्ध धर्म का प्रचार हो गया। चीन के बाद बौद्ध धर्म कोरिया पहुँचा और फिर कोरिया से जापान। जापान ने भारत का धर्म ही नहीं अपनाया बल्कि उसके साहित्य, कला आदि को भी गौरव के साथ ग्रहण किया। आज भी जापान में बौद्धकाल का भारत है। प्रस्तुत लेख में जापान के बौद्ध सम्प्रदायों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। —सं०]

जापान में महायान सम्प्रदाय के छः फिरके हैं :—(१) **तेन्दाई**, (२) **सिंगोन**, (३) **निचिरेन**, (४) **जेन**, (५) **जोदो** और (६) **शिन**। इनके अलावा दो और छोटे फिरके हैं (७) **जी** और (८) **युद्जुनेमबुत्सु**। कुछ पुराने मन्दिर (९) **होसो** और (१०) **केगोन** सम्प्रदाय के भी हैं। लेकिन इनमें से जीवित और शक्तिशाली पहले छः ही हैं।

जापान में इन सम्प्रदायों को दो भागों में विभाजित करते हैं—(१) **जिरीकी** और (२) **तारिकी**। 'रीकी' चीनी शब्द है और अर्थ है शक्ति। 'जी' माने स्वयं और 'ता' माने दूसरा। इससे 'जीरिकी' के माने हुए 'जो निर्वाण या बुद्धत्व प्राप्त करने में अपनी ही शक्ति पर भरोसा रखता है' और **तारिकी** के माने हैं 'जो निर्वाण के लिए किसी दूसरे की मेहरबानी पर भरोसा रखता है। हिन्दुस्तान, बर्मा और स्याम के

बौद्धों को, जो **थेरवादी** (हीनयानी) हैं **'तारिकी'** मत **बुद्ध** की शिक्षाओं से बहुत दूर मालूम होगा।

तेन्दाई, जिरिकी वालों का एक सम्प्रदाय है और जापान में **हीई** पहाड़ के आस पास कई सदियों से चला आ रहा है। यह सम्प्रदाय **छठी** सदी में **चीन** में शुरू हुआ और वहाँ से भिक्षु **सेचो** द्वारा जापान लाया गया। इनके मरने के बाद जापान सम्राट् ने इनको **देंग्यो-देसी** की उपाधि दी। 'देसी' माने 'बड़ा शिक्षक'। इसका सिद्धान्त **सद्धर्मपुण्डरिक** सूत्र के आधार पर है। **तेन्दाई** सम्प्रदाय की शिक्षा है कि दुनिया में सिर्फ मनुष्य ही नहीं बल्कि जानवर और पौधे और हमारे पैर के नीचे की धूलि तक बुद्धत्व प्राप्त कर सकते हैं। **तेन्दाई** भिन्नता में एकता की शिक्षा देता है।

कुछ दिनों के बाद **तेन्दाई** सम्प्रदाय को सम्राट् की संरक्षता प्राप्त हुई और धीरे धीरे जापान साम्राज्य में बहुत इज्जत मिली और प्रचार हुआ। **क्योतो** से मन्दिर तक का रास्ता बड़ा ही सुन्दर है। पहाड़ की चोटी पर से एक तरफ **क्योतो** और दूसरी तरफ बिवा भील का नीला पानी दिखलाई पड़ता है। मन्दिर एक बड़े बगीचे के बीच में है। बुद्ध की मूर्त्ति के सामने हमेशा चिराग जलता रहता है और भिक्षु सूत्रपाठ करते रहते हैं। यहीं से देश भर में बौद्धधर्म फैला। बाद के सब सम्प्रदाय **तेन्दाई** के ही बाल-बच्चे हैं।

शिंगोन भी जिरिकी सम्प्रदाय का ही एक फिरका है। इस मत के प्रवर्तक **कूकाई** आठवीं सदी के अन्त में हुए थे। ये मरने के बाद **कोबोदेशी** कहलाने लगे। इन्होंने भी **देंग्यो** देशी की तरह एक पहाड़ की चोटी पर ही अपना मन्दिर स्थापित किया। यह मन्दिर **कोयासाँ** पहाड़ पर **काई** प्रान्त में **क्योतो** के नजदीक है। ११ सौ बरस से तीन हजार फुट ऊँची पहाड़ की चोटी पर इस मन्दिर में पूजा होती आ रही है। मन्दिर विशाल वृक्षों के बीच में है। भीतरी भाग बड़ा सुन्दर है। दीवालों से मिली हुई वेदी पर बुद्ध के भिन्न भिन्न जन्मों की मूर्तियाँ हैं। हमेशा मन्दिर में दीपक और धूप जलते रहते हैं। **कोबोदेशी** जापान में अब भी एक आध्यात्मिक शक्ति माने जाते हैं। वे केवल धार्मिक और सामाजिक नेता ही नहीं थे बल्कि अपने जमाने के मशहूर चित्रकार, मूर्तिकार और सुलिपिकार थे। वे तीन सम्राटों के मित्र थे। लेकिन वे सिर्फ बड़े लोगों में ही नहीं रहते थे; गरीबों के भी वे दोस्त थे। उनके जीवनकाल में छोटे बड़े सब उनको प्यार करते थे और अब मरने पर सब इज्जत करते हैं।

कोबोदेशी ने भी चीन ही में शिक्षा पाई थी और **शिंगोन** की शिक्षा वहीं से लाये। यह शिक्षा भारतीय भिक्षु नागार्जुन से चली आ रही है।

जापान में शिंगोन सम्प्रदाय के छोटे छोटे मन्दिर बहुत फैले हुए हैं। उनमें से कई के साथ स्कूल, कालेज और अनेक निःशुल्क धर्म-संस्थाएँ भी हैं। **कोया** में एक अच्छा-सा विश्वविद्यालय भी है। जापान में धर्म के साथ साथ शिक्षा और दान मिला हुआ है। इसका सबसे सुन्दर नमूना **शिंगोन** सम्प्रदाय है।

इस सम्प्रदाय के विचार से जीवन और मरण दोनों वास्तव में एक ही हैं। बुद्धत्व इसी शरीर से प्राप्त किया जा सकता है। इसको प्राप्त करने के लिए शरीर, वचन और

विचार तीनों के अमर बुद्ध के शरीर, वचन और विचार से सामंजस्य स्थापित कर देना है। यह सामञ्जस्य धार्मिक कृत्यों, पूजाओं और ध्यान से स्थापित हो सकता है। बुद्ध ने यह शिक्षा **महावैरोचन सूत्र** और **वज्रशेखर सूत्र** में दी है। इस सिद्धान्त को **फुनोशिं न** कहते हैं।

ज़ेन सम्प्रदाय भी **जीरिकी** ही का एक अङ्ग है और शायद **थेरवाद** सम्प्रदाय के सबसे नजदीक यही है। पिछले मतों की तरह यह भी हिन्दुस्तान से चीन होते हुए जापान आया। इसकी शिक्षा **तथागत** ने **गृद्धकूट** पर्वत (राजगृह) पर दी थी। इस सम्प्रदाय के लोगों का विश्वास है कि भगवान् बुद्ध ने पहले पहल महाकाश्यप (बुद्ध के एक प्रधान शिष्य) को बुद्धत्व प्राप्त करने का भेद बताया। इसी लिए इस सम्प्रदाय के प्रथम गुरु महाकाश्यप हैं।

ज़ेन सम्प्रदाय का विश्वास है कि सत्य की प्राप्ति शब्दों द्वारा नहीं हो सकती। यह सम्प्रदाय शास्त्र-विधि, पूजा और किताबी ज्ञान की परवा नहीं करता; अनुभव ही उसकी शिक्षा का आदि और अन्त है। यह मनुष्य के अपने ही प्राप्त करने की वस्तु है। सत्य की प्राप्ति के लिए ध्यान आवश्यक है। मस्तिष्क को बाहरी विचारों से शून्य करके ही आन्तरिक अनुभव प्राप्त किया जा सकता है। यह नहीं कि ज़ेन सम्प्रदायवाले मनुष्य के प्रतिदिन के विचारों से घृणा करते हैं। बल्कि वे इन सब विचारों का केन्द्र एक आन्तरिक आध्यात्मिक विचारधारा को मानते हैं। लेकिन इस केन्द्र का पता केवल ध्यान करने से लग सकता है, न कि पढ़ने से और तर्क करने से।

गो कि ज़ेन सम्प्रदाय ध्यान पर बड़ा जोर देता है; लेकिन फिर भी व्याख्यानों, धार्मिक पूजा-पाठ और अध्ययन-अध्यापन को बिलकुल ही नहीं छोड़ देता। इस सम्प्रदाय के लोग जापानियों में सबसे ज़्यादा पढ़े-लिखे और प्रगतिशील हैं। ये लोग केवल सत्य ही नहीं बल्कि सौन्दर्य्य पर भी ध्यान रखते हैं। **ज़ेन** केवल एक धर्म ही नहीं है; बल्कि ज़िन्दगी का एक तरीक़ा है।

अब हम **तारिकी** सम्प्रदायवालों पर आते हैं। इनका विश्वास है कि निर्वाण (मुक्ति) अपने प्रयत्न और गुण से नहीं; बल्कि किसी दूसरे की कृपा से ही प्राप्त हो सकता है। यह दूसरे हैं **बुद्ध अमिताभ**। **अमिताभ की** पूजा **तेन्दाई** से ही निकली।

जोदो सम्प्रदाय के प्रवर्तक **होनेन शोनेन** का कहना है कि **जिरिकी** पथ साधारण मनुष्यों के लिए बहुत कठिन है और न मालूम कितनी बार जन्म लेने पर मनुष्य पूर्ण होगा। बुद्ध और उनकी दया में विश्वास रक्खो। यह तुम्हें दूसरे किनारे पर पहुँचा देने के लिए काफ़ी है। **होनेन** ने विश्वास और कर्म दोनों पर ज़ोर दिया था, लेकिन उनके शिष्य **शिनरान** ने केवल विश्वास को ही महत्त्व दिया। इनका सिद्धमन्त्र है **'नमो अमिदा बुत्सू'** (नमो अमिताभ बुद्धं)।

अमिताभ की दया पर विश्वास रखने से मनुष्य मरने पर **पवित्र देश में** पहुँच जाता है। कुछ लोग इसी को अपना ध्येय मानते हैं। और कुछ लोगों का विश्वास है कि उस देश में ज्ञान प्राप्त कर फिर जन्म ले निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं।

इस सम्प्रदाय का प्रसिद्ध मन्दिर **चीयोनिन,** क्योतो के पूरब एक पहाड़ी पर १२११ ई० में स्थापित हुआ। ८० फीट ऊँचे फाटक से घुसकर एक बहुत अच्छे और पुराने चीर के वन में प्रवेश करते हैं। वन के बीच मन्दिर है। उसमें दो कमरे हैं। एक में **बुद्ध अमिताभ** की पूजा होती है और दूसरे में मत के प्रवर्तक **होनेन** की। बुद्ध की मूर्ति एक बहुत बड़े सुनहले कमल पर स्थापित है। मन्दिर में एक विशाल घण्टा है। उसके पीछे एक ऊँचे चबूतरे पर **होनेन** की समाधि है।

शिन सम्प्रदाय जापान का सबसे बड़ा सम्प्रदाय है। इसके भी दो प्रधान विहार **निशी** और **हिगाशी** क्योतो ही में हैं। ये दोनों विहार इस मत के प्रवर्तक **शिनरान** के स्मारक हैं। इन्होंने और सम्प्रदाय-प्रवर्त्तकों की तरह भिक्षुओं का नहीं बल्कि उपासकों को महत्त्व दिया। इनके अनुसार मनुष्य विश्वास करते ही निर्वाण प्राप्त कर लेता है। मन्त्र का जप तो केवल हृदय की कृतज्ञता प्रकट करना है। **शिन** सम्प्रदाय सामाजिक और शिक्षा की उन्नति के लिए सबसे ज़्यादा प्रयत्नशील रहता है। इस सम्प्रदाय को इस बात पर घमण्ड है कि इसमें आधुनिकता ज्यादा है। इस सम्प्रदाय में अन्धविश्वास कम है। लोग सुखी जीवन में विश्वास रखते हैं। इन लोगों की एक आँख स्वर्ग पर ज़रूर लगी रहती है पर दूसरी इस पृथ्वी पर ही रहती है।

निचिरेन सम्प्रदाय के प्रवर्तक थे **सन्त निचिरेन**। यह सम्प्रदाय १२५३ में स्थापित हुआ। इसको **होके** सम्प्रदाय भी कहते हैं। क्योंकि इसकी शिक्षा का आधार **होकेक्यो** (=सद्धर्मपुण्डरीक) है। **निचिरेन** और सम्प्रदाय के प्रवर्तकों की तरह किसी बड़े खानदान के न थे। वे एक गरीब मछुए के लड़के थे। जीवन में उनके सामने कितनी ही कठिनाइयाँ आईं, लेकिन वे उन सबको पार कर एक नया सम्प्रदाय क़ायम करने में सफल हुए। इस सम्प्रदाय का सिद्धमन्त्र है **'नमुम्योहोरेंगे क्यो'** (=नमो सद्धर्मपुण्डरीकं)। वे इस सूत्र की ही पूजा करते हैं। और सम्प्रदायों की तरह इस सम्प्रदाय के लोग भी सामाजिक सेवा के क्षेत्र में खूब भाग लेते हैं।

बौद्धधर्म जापान में जीवित धर्म है। इस धर्म का आधार है **'बोधिसत्त्व का सिद्धान्त'**। यही महायान सम्प्रदाय का बीज है। **बोधिसत्त्व** वह है जो उस समय तक निर्वाण से इन्कार करता है जब तक संसार के सभी प्राणी मुक्त न हो जायँ। वह खुद निर्वाण का अधिकारी होता है, किन्तु उसकी दृष्टि में जब तक संसार के सभी प्राणी निर्वाण प्राप्त नहीं करते, तब तक उसे स्वयं प्राप्त करना महान् स्वार्थपरता है।

———

प्रश्नोत्तर

(भिक्षु सोमानन्द जी)

प्रश्न—'मत' का क्या अर्थ है ?

उत्तर—किसी शास्ता का बतलाया हुआ मार्ग मत कहलाता है।

प्रश्न—शास्ता कौन है ?

उत्तर—जो स्वयं सत्य का बोध कर, दूसरों को भी उसका उपदेश देता है वह शास्ता कहलाता है।

प्रश्न—'बोध' का क्या अर्थ है ?

उत्तर—ज्ञान से जान लेना।

प्रश्न—'धर्म-संस्थापक' का क्या अर्थ है ?

उत्तर—किसी भी धर्म को पहले पहल चलानेवाला धर्म-संस्थापक कहलाता है।

प्रश्न—क्या सभी धर्म सत्य हैं ?

उत्तर—नहीं, सब बातों को न जाननेवाले, सब वासनाओं को दूर न किये हुए शास्ताओं के धर्म सत्य नहीं हैं।

प्रश्न—क्या सब धर्मों को मानने से हम मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर—नहीं, सन्मार्ग को न दिखानेवाले धर्मों को मानने से हम कभी मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकते।

प्रश्न—सर्वज्ञता का क्या अर्थ है ?

उत्तर—सभी जानने योग्य बातों के जानने का ज्ञान सर्वज्ञता कहलाता है।

प्रश्न—सभी बातों को कैसे जान सकते हैं ?

उत्तर—अविद्या और तृष्णा को नाश कर सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर हम सभी बातों को जान सकते हैं।

प्रश्न—सर्वज्ञ को क्या क्या जान लेना चाहिए ?

उत्तर—संसार और उसके प्राणियों की उत्पत्ति तथा विनाश, दुःख और उससे मुक्ति, इन बातों को जानना चाहिए।

प्रश्न—तुम किस धर्म को मानते हो ?

उत्तर—बौद्ध धर्म को।

प्रश्न—बौद्ध धर्म क्या है ?

उत्तर—भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट धर्म को बौद्ध धर्म कहते हैं।

(क्रमशः)

———

भगवान् बुद्ध

(ले० सुमन वात्स्यायन)

(आश्विन के बाद)

छगु वेलें कुमारं छम्ह पीतवस्त्र पुनातःम्ह, मुण्डितम्ह, ल्हाते भिक्षापात्र जोनातःम्ह, शान्तमूर्तिम्ह प्रव्रजित (– संन्यासी) यात खन, वयागु सौम्य मुखाकृति व कुमार अपाहे आकृष्ट जुल। सारथी यात धाल––"थ्व पीत वस्त्र धारीम्ह मनू सुख: ? थ्व गपायच्वों शान्त हानं स्थिर चित्तम्ह थेच्वों !! रथ दिकि, जि थ्वनाप खँल्हाय् मासेवो।

रथ दिकल। कुमारं व प्रव्रजित याथास वना नेन––"छः गिं सुखः ? छःपिनि शिरनं नांगा अथवा सँ खानातःगु दु, वसःनं जिमिस-कस्या थें मखु। छःपिं छुं छुं मगसे, छुं छुं वास्ता मदेक चाहिला चोन। छःपिसं सुखमय जीवन यात छाय् प्रसन्न याना विस ज्याना ?" "कुमार, जि प्रव्रजितम्ह खः। जिं भिंगु धर्माचरण या लागि शान्तिपदया तप्राप्रिया लागी, शुभ कर्म संसारया महाकल्याण यायेया लागी, अहिंसा हानं फुक प्राणिपिंत समवत् भापींगु व अमित अनुकम्पा तयेया लागी प्रव्रजित जुया चोनागु खः। संसार यात उकियागु दुःख-बन्धनं मुक्त यायेगु या न्ह्योने व्यक्तिगत सुखमय जीवन जितः भिंथें मचों। कुमार ! जि स्वतन्त्र, मुक्त, अतः निर्भय जुया, छुं वास्तामया से सकल प्राणीपिन्त मैत्री-भावना तया चाचा हिलाचोनागु खः।

छुं दिन लिपा छक कुमार अनेक प्रकारया आभूषण, माला, गन्धादिं सुसज्जित जुया चोंचोन। महले नट-नटी, चारण-वन्दिपिनिगु म[illegible]न स्वर-ध्वनिं भवन गुञ्जायमान जुया चोंचोन। थुगुहे वेले राजां थुगु समाचार छोया हलकि कुमार यात यशोधराया गर्भं छम्ह पुत्र-रत्न प्राप्त जुल। कुमारं थुगु खँ नेना धाल––"राहु जन्मे जुल," "बन्धन जन्मे जुल" राजां हानं थुगु खँ सिया उम्ह कुमार या नाम "राहुल कुमार" तया विल।

सन्ध्या समये, सदां थे,कुमार यात याउसें चोके यानितिं प्याखंल्हुइपिंगु युवतिपिनिगु छगु समाजवल। नर्तकिपिसं मधुर मधुरगु मे हाल बाजां थात हानं अपालं मोहकगु नाट्यकला केन। कुमार सिद्धार्थ व फुक्क सोया खनानं मेगुहें खें मग्न जुया चोन। मेहालेगु प्याखंल्हुइगु दित। व थाकेजूपिं नर्तकिपिंनं थन अन मदेक गोगोतुला छोत हानं याकनं हे धुर्र धुर्र न्हेव्या वेकल।

मध्य रात्रि कुमार न्ह्योलं चाल। सुगन्धितगु चिकं मतयागु त्वारिव्वा च्यानाहा चोन तिनि। न्ह्योने सं छु खन ? श्मशाने बांछोयातःगु मृत शरीर यागु पहनं प्याखं ल्हीपि थुखे उखे मदेक ल्हातुति वांवां छोया चता चता वाना चोंचोन। गुलिं गुलिंसिनं मिखा वाँलक तिनातः गुदु हानं गुलिं गुसिंलिया मिखा वछि चाला चोन, गुगु ग्याना पुसे चोना चोन। म्हुतु कपट व लाँः प्याहा वयाचोन गुकिं अमिगु शरीर प्याना चोन। न्ह्यो घुरू घुरूँ न्याना चोन। गुलिं गुलिंसिनं वा कुतु कुतु न्ह्य़ेया चोन। गुलिं गुलिंसिया वसं छखे छखे लावोंगुलिं अमिगुधच्यै...पुसे चोंक खने दयाचोन। म्हगसे खँगुलिं गुलिं गुलिं-सिनं म्हतं भायूत्यामजिगु शब्द पिकया चोन। थ्व फुक्क खना कुमार या मन अत्यन्त

उद्विग्न.जुल। वयात व सुसज्जित, सुगन्धित देवभवन समानगु रंगशाला थोगिगु मृत शरीरं जागु, जनहीनगु श्मशानथें चोन। रंगशालाया थुगु आनन्द, सुखमय प्रदीपं छुगु तप्त ज्वाला प्याहा वल, गुप्तियात कुमार सिद्धार्थं संसारे व्याप्तजूगु खन। आकाभ्काकां भवन थुकथं थोया वलः—हा ! कष्ट ! ! हा शोक !! हा ! मृत्यु ! ! हा ! जरा !!, बस, आ थुलिहे ! "जि थुकियात सिंकां ताते" थुगुहे दृढ निश्चयं उगुहे समये कुमारं गृहत्याग यायेगु सङ्कल्प यात।

कुमारं धाल—"छन्दक ? जि महाभिनिष्क्रमण याये। सल ठीक या।" "ज्यूका देव ! धया सल ठीक याना सूचना विल—"देव, अश्वराज कन्थक सुसज्जित व सुअलंकृत दु" वाचाइलेति 'छन्दक" सारथि नाम "कन्थकं" सल गया संसारं अज्ञात, अपरिचितम्ह राजकुमार मोहाच्छादित अन्धकारमय पृथ्वी संसारया कल्याणया लागि ज्ञान-प्रदीप मालेत प्याहा वन।

नेवा भाषं धम्मपद

नेपाया बौद्ध उपासक पिंन्त 'धम्मपद' या परिचय याका चोने मागु आवश्यकता मदु। हिन्दु पिनि या निर्तिं गीता, रामायण, इसाइपिनिया निर्तिं बाइबल हानं मुसमांतेगुया निर्तिं कुरान, गुगु प्रकारं जुया चोनीगु खः बौद्ध पिनिया नित धम्मपदनं अथेहे खः। सुं मनुष्यया छुगुहे सफूली भगवान बुद्धया अमूल्य शिक्षा बोना काये योसा व मनुष्यं धम्मपदयाहे अध्ययन यायेमा। धम्मपदे बौद्ध धर्मया प्रायः फुकं सिद्धान्त दुने लाःओ। थुगु ग्रन्थ रत्न संसार या फुक भाषं अनुवाद जुयाचोंगु दु। किन्तु थ्व दुःख खःकि आतक्क थुगु सफूया प्रमानिक अनुवाद नेवा भाषं छापे मजुनी। थुगु आवस्यक पुर्णयाय या लागी महाबोधि सभां नेवा भाषं मूल पाली सहीत 'धम्मपद' छापेयागु निश्चय यागु दु। किन्तु भों व छपाई आदिया मू जाया चोंगुलिं याना सभाया न्ह्योने आर्थिक (दाँ-धेबा) संकट हेज्वुवया चोन। अतः सभां नेपाया उदार धर्म प्रेमी दाजु किजा पिनि पाखें थुगु परम पुण्य कार्ये ग्वाहालि कोना चोंगु दु। 'धम्म पद' छापे या येगु ज्याय् आपा मो २५० ति दाँ मालीगु खने दु। नेपालं सभायात उचित सहायता प्राप्त जुगु खन्डे आवैगु माःसं निसें हे 'धम्मपद' छापे जूयावनी। फुक्क प्रकारयागु सहायता, मन्त्री, महाबोधि सभा, सारनाथ बनारस धयागु पतास छोया हयेमा।

'धर्म-दूत' के लिए दान

चटगाँव के प्रसिद्ध उपासक श्री० वीरेन्द्रलाल मुत्सद्दी ने 'धर्म-दूत' की सहायतार्थ पाँच रुपये देने की कृपा की है। 'धर्म-दूत' के ऐसे ही प्रेमी-सहायक उसके बल हैं।

सारनाथ-मेला

महाबोधि सभा की स्वर्ण जयन्ती
तथा
मूलगन्धकुटी विहार, सारनाथ का दसवाँ वार्षिकोत्सव

ता० २६, २७ और २८ दिसम्बर-शुक्रवार, शनिवार और रविवार

२६ दिसम्बर

सुबह ५ बजे—प्रभातफेरी, महाबोधि विद्यालय।
६ बजे मंगलाचरण, मूलगन्धकुटी विहार में।
११ बजे बुद्ध-पूजा।
११½ से १ बजे रस्साकशी—"सारनाथ विजयचिह्न" के लिये—भिन्न भिन्न गाँवों के लोगों में। जज—श्री हरीदास जी, ग्राम-सुधार सभा।
१ बजे—भगवान् बुद्ध की पवित्र धातु का जलूस, मंदिर से धमेक-स्तूप होता हुआ चौखंडी-स्तूप जायगा। वहाँ से पक्की सड़क से मंदिर वापस।
३½ बजे—स्वर्ण जयन्ती तथा वार्षिकोत्सव की सभा।
४½ बजे—रोशनी।
६½ बजे—बृहत् कैम्पफायर।

२७ दिसम्बर

सुबह ५ बजे—प्रभातफेरी, महाबोधि विद्यालय।
६ बजे—मंगलाचरण, मूलगन्धकुटी विहार में।
८ से ११ बजे—भगवान् बुद्ध की पवित्र धातु का दर्शन।
११ बजे—बुद्ध पूजा।
१ बजे—दङ्गल। जज—श्री० नामवर सिंह।
३ बजे—स्वर्ण जयन्ती तथा वार्षिकोत्सवकी सभा।
रात ५½ बजे—रोशनी।
६½ बजे—'भगवान बुद्ध और उनकी शिक्षा' पर श्री० माधोप्रसाद खन्ना द्वारा व्याख्यान (मैजिक लैंटर्न के साथ) तथा ग्राम कवि सम्मेलन।

२८ दिसम्बर

सुबह ५ बजे—प्रभातफेरी, महाबोधि विद्यालय द्वारा।
६ बजे—मङ्गलाचरण।
८ से ११ बजे—भगवान् बुद्ध की पवित्र धातु का दर्शन।
११ बुद्ध-पूजा।
११½ से २½ बजे—स्कूल के लड़कों के खेल।
२½ से ३½ बजे—व्यायाम प्रदर्शन, काशी व्यायामशाला द्वारा।
३½ बजे—स्कूल वार्षिकोत्सव और पारितोषिक वितरण। सभापति डाक्टर कालिदास नाग एम० ए०, डी० लिट०।
५½ बजे—रोशनी।

देवप्रिय वलीसिंह

प्रधान मंत्री, महाबोधि सभा, सारनाथ।

रजिस्ट्री की संख्या ए० ७९०

महाबोधि सभा
की
स्वर्ण जयन्ती

१८९१—१९४१

उत्सव-समिति

सभापति—सर मन्मथनाथ मुकर्जी, के० टि०, एम० ए० बी० एल

अवैतनिक मंत्री—डा० कालिदास नाग, एम्० ए०, डि० लिट्० (पैरिस)

कोषाध्यक्ष—श्री देवप्रिय वलिसिंह, बी० ए

उत्सव के स्थान तथा तिथियाँ

बुद्ध गया—२४ दिसम्बर १९४१

सारनाथ (बनारस)—२६, २७, २८ दिसम्बर १९४१

कलकत्ता—३०, ३१ दिसम्बर ४१ तथा १ जनवरी १९४२

प्रोग्राम (कार्यक्रम)

१. 'बौद्ध स्वर्ण पुस्तक' नाम के एक स्मृतिग्रन्थ का प्रकाशन जिसमें भिन्न भिन्न देशों के प्रसिद्ध लेखकों, सामाजिक कार्यकर्त्ताओं इत्यादि के लेख होंगे।

२. कलकत्ता में बौद्ध कला, साहित्य इत्यादि संबन्धी एक अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी का आयोजन।

३. भारत, बर्मा तथा सिंहल के पवित्र तथा प्राचीन बौद्ध स्थानों की यात्रा का प्रबन्ध।

४. सभा के कामों के लिये 'स्वर्ण जयन्ती कोष' के नाम से १,००,००० रुपयों का इकट्ठा करना

५. कालेज और स्कूल के विद्यार्थियों के लिए लेख प्रतियोगिता।

हमारी अपील

१. अंतर्राष्ट्रीय बौद्ध विश्वविद्यालय की स्थापना में स्वर्णजयन्ती कोष में दान देकर सहायक बनिए।

२. बौद्ध चित्र तथा कला की वस्तुएँ प्रदर्शनी के लिए भेजिए।

३. अपना चन्दा भेजकर स्वर्ण जयन्ती उत्सव-समिति के सभासद या दायक बनिए—

स्वागत समिति के सभासद—१०)

दायक १००) या उपर

चिट्ठीपत्री अवैतनिक मंत्री, स्वर्ण जयन्ती समिति, ४ ए कालेज स्क्वायर, कलकत्ता के पते से और रुपया या चेक कोषाध्यक्ष, जुबिली कमेटी हांगकांग, शंघाई बैंकिंग कार्पोरेशन कलकत्ता के नाम से भेजिए।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स
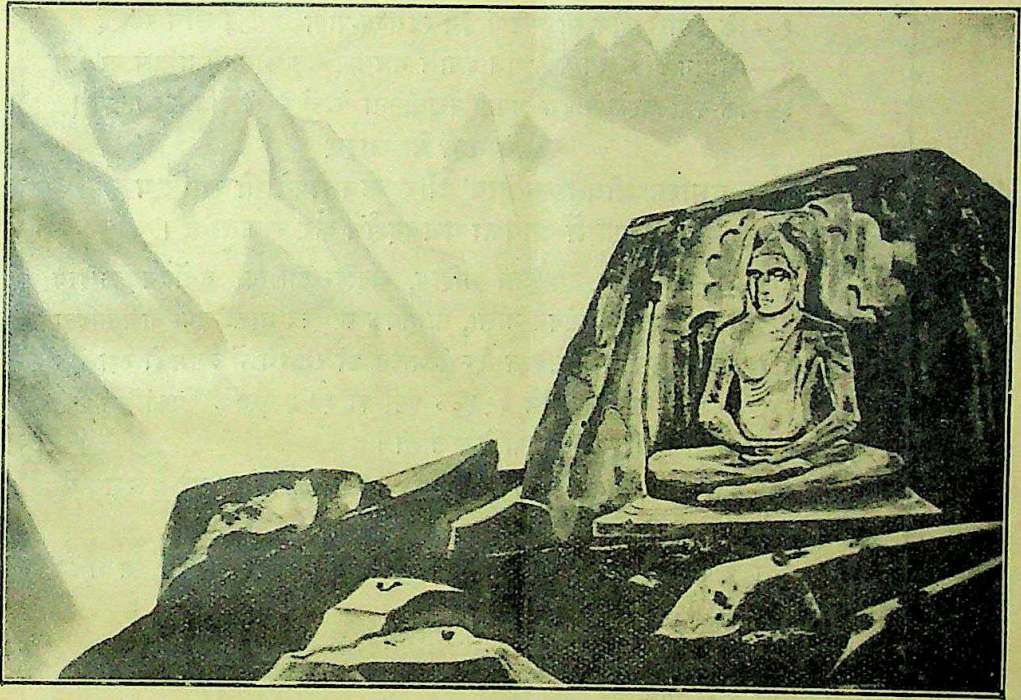
ध्यान-मग्न भगवान् बुद्ध

(चित्रकार :—श्री रोरिक)

वर्ष ६
अंक ६
स० ६४

भाद्रपद बु० सं० २४८५ / वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
नमूना मुफ्त

विषय-सूची

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, सितम्बर, बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४१ | अंक ६

भिक्षु-संघ के प्रति

(श्री सोहनलाल द्विवेदी)

ओ जगती के निखिल लोक में, छानेवाले अरुण प्रकाश!
लीन हुए किस अस्ताचल में, आज नहीं करते तम नाश।
ओ सन्तप्त विश्व-मरुथल में, घिरनेवाले नीरद श्याम,
दूर क्षितिज में कहाँ आज तुम, करते हो अनंत विश्राम!
ओ जग-जीवन के पतझर के, नव जीवनमय नवल वसन्त,
कहाँ काल के गहन गर्भ में, सोये सुलझाते निज अन्त।
भूल गये क्या सभी प्रतिज्ञा, भूल गये क्या व्रतचारी,
कहाँ तुम्हारे वे विहार, मठ, संयम और नियम-धारी!
किन्तु कहाँ तुम! आज बताओ, कहाँ तुम्हारा गुरु गौरव!
कहाँ आज है वह दिनचर्य्या, गैरिक अंचल का वैभव!
क्या न उठोगे एक बार फिर, महासिंधु की गहन हिलोर!
अरुणा करुणा की लहरों से, दोगे नहीं विश्व को बोर!

आदर्शों का आदर्श

(भिक्षु मेत्तेय्य)

पवित्र जीवन ही मानव दुःख का सर्वश्रेष्ठ निदान है।

पवित्र हृदय प्रसन्नता का दाता ही नहीं प्रसन्नता की मूर्ति भी है। चाहे राजमहल हो या बन्दीगृह, उसके लिए सभी जगहें तपोभूमि हैं। वह जहाँ कहीं जाता अपने हृदय में त्याग, प्रेम और दया लिये जाता है।

संसार के प्राणियों के दुःख से वह सदा जागरूक रहता है। सत्य देखनेवाले को जाति और रंग का भूल-भुलैया धोखा नहीं दे सकता। सभी प्राणी, चींटी से लेकर मनुष्य पर्य्यन्त, मृत्यु के अधीन हैं। जीवन और मृत्यु के बीच अगणित दुःख हैं। यह संसार घृणा, संघर्ष और हिंसा से भरा है। यहाँ असंख्य हानियाँ, रोग और बुढ़ापे हैं। इसके सिवा प्राणी लगातार अपने आन्तरिक शत्रुओं—लोभ, द्वेष, क्रोध और अविद्या द्वारा सताये जाते हैं।

एक पवित्र हृदय संसार के सभी पीड़ित प्राणियों को करुणापूर्ण दृष्टि से देखता है; चाहे वे प्राणी रेंगनेवाले हों, दो पैरवाले हों, चार पैरवाले हों, राजा हों, डिक्टेटर हों, सेनापति हों, या साधारण ही जन क्यों न हों।

एक पवित्र हृदय सबका दुःख उसी प्रकार अनुभव करता है जिस प्रकार एक माता अपनी मरती हुई सन्तान का। नहीं, वह उनका दुःख और भी अधिक अनुभव करता है। दूसरों को दुःख के चक्र से बचाने के लिए वह अपने को उत्सर्ग कर देता है। उसका जीवन इतना उपकारमय होता है कि दुनिया को उसके ख्याल करने मात्र से शान्ति मिलती है। दूर रहने पर भी वह अपने मित्रों पर ऐसा असर डालता है कि मानो वे उसके साथ ही हों। मृत्यु के बाद भी वह अपने उदाहरणों द्वारा कितनों को पवित्रता की राह पर ले जाता है।

कुछ लोग अपने कुटुम्ब का प्यार करते हैं, कुछ लोग अपने शहर को और कुछ लोग अपने देश को; लेकिन एक पवित्र हृदय दुनिया के तमाम जीवों को प्यार करता है। दुनिया के सब प्राणी उसकी दया के पात्र हैं। उनका दुःख उसका दुःख है; बल्कि वह उनके दुःख और पीड़ा को उनसे भी ज्यादा अनुभव करता है। उसका जीवन त्याग और करुणा का एक महाकाव्य होता है।

दुनिया सोती है, लेकिन उसके लिए नींद कहाँ! वह तमाम रात जगा हुआ विचार करता है, "कैसे मैं दुनिया को बचा सकूँगा। कब मैं अपने हृदय को दुनिया के लिए उत्सर्ग कर सकूँगा। मेरे मित्र कब आवेंगे और मुझसे मेरा रुधिर और मांस माँगेंगे। दुनिया की भूख और प्यास को कब मैं अमृत से सन्तुष्ट कर सकूँगा।

"मैं अपने जीवन को खतरे में डालकर भी प्रतिदिन पवित्रता के नियमों का पालन कर सकूँ। मैं कभी भी किसी नियम को नहीं तोड़ूँगा चाहे संसार का राज्य ही क्यों न मिल जाय। मैं अपना जीवन, तथागत के बतलाये मार्ग पर चलने के लिए, अर्पण करता हूँ।

"बार बार जन्म लेकर भी मैं त्याग को अपनाऊँ, ताकि संसार की सेवा कर सकूँ और उसे दुःख तथा विपत्ति से बचा सकूँ।

"मेरा मन अच्छे कामों से कभी न मुड़े। चाहे सारा संसार मेरे खिलाफ तलवार लेकर खड़ा हो जाय पर मैं सच्चे रास्ते से न डिगूँ। यदि आग की भीषण लपट को गले लगाकर भी विश्व को दुःख और पीड़ा से बचा सकूँ तो उसके लिए मैं सहर्ष तैयार रहूँ। जिस प्रकार चन्दन का पेड़ अपनी मीठी सुगन्धि काटनेवाली कुल्हाड़ी को भी देता है उसी प्रकार मैं अपना सर्वोपरि सुख उनके लिए न्यौछावर कर दूँ जो मुझे गाली देते हैं, पीटते हैं या मार डालना चाहते हैं।

"मैं कभी भी अपने वचन से विमुख न होऊँ। मेरे वचन, कर्म और विचारों में कोई फर्क न हो। मैं अपना जीवन देकर भी सत्य की रक्षा करूँ।

"सब जीवधारी दुःख और पीड़ा से मुक्त रहें। वे अन्धकार से प्रकाश में आवें। सारी दुनिया के लिए मैं माँ का हृदय बनूँ।

"मैं अपने मूक उदाहरण द्वारा सारे विश्व को निष्पक्षता और निष्काम भाव की शिक्षा दूँ। मैं उन दोनों को समान भाव से देखूँ जो मुझपर थूकते हैं और जो मेरी पूजा करते हैं। मैं उनके साथ भी न्याय करूँ जो मुझसे घृणा करते हैं। मैं न निन्दा से दुखी होऊँ न प्रशंसा से प्रसन्न। मैं उस चन्द्रमा की तरह निष्पक्ष रहूँ जो सबको शीतल करता है और उस पृथ्वी की तरह जो सब कुछ सहन करती है।

"मैं भगवान् बुद्ध का सच्चा अनुयायी बनूँ जो असहायों के सहायक हैं, भूले हुओं के पथ-प्रदर्शक हैं; विश्व के प्रकाश हैं और हमारे जीवन के जीवन हैं।"

बुद्धं सरणं गच्छामि
धम्मं सरणं गच्छ[illegible]
सङ्घं सरणं गच्[illegible]

चीन के एक बौद्ध मठ का दैनिक जीवन

(श्री चू चान)

फू-ती-सोह का मठ एक पहाड़ी पर, पेड़ों के बीच में, पूरब मुँह का है। प्रति-दिन सवेरे उसके छाजन के पीले खपड़ैलों पर सूर्य की पहली किरण पड़ती है। चारों तरफ शान्ति है। मठ में करीब सत्तर साधु ध्यान में मग्न रहते हैं। उनके, आध्यात्मिक चिन्तन से मानों ऐसा शक्तिशाली कम्पन उठता रहता है कि वहाँ की हवा ऊँचे से ऊँचे पहाड़ों की हवा से भी स्वच्छ मालूम होती है।

तीन बजे सवेरे एक बड़ा ढोल और घंटा बजता है। भिक्षु लोग उठ बैठते हैं। एक बड़े टब में पानी गर्म किया रहता है, जिससे वे हाथ मुँह धोते हैं और पूजा का वस्त्र

पहन कर तैयार हो जाते हैं। फिर एक एक करके मन्दिर में जाते हैं। वहाँ भगवान् बुद्ध की मूर्ति के आगे सैकड़ों बत्तियां जलती रहती हैं। मन्दिर धूपादि की सुगन्धि से भरा रहता है। तीन बार साष्टाङ्ग नमस्कार कर सब भिक्षु खड़े हो जाते हैं; फिर धूपपूजा का मन्त्र-पाठ शुरू करते हैं। भगवान् की वन्दना करके आखिर में सच्चे रास्ते पर चलने का प्रण करते हैं।

पूजा के बाद सबको सादा खाना दिया जाता है। आम तौर से खाने में भात और तरकारी रहती है; क्योंकि भिक्षु लोग जीवहिंसा को बहुत बुरा मानते हैं अतः मांस नहीं खाते। खाने के समय सिर्फ एक चीज परोसी जाती है, क्योंकि भिक्षु जीने के लिए खाता है; स्वाद के लिए नहीं। भोजन के बाद थोड़ा समय मिलता है जिसमें कि वे अपने कपड़ों की सफाई या मरम्मत करते हैं। फिर ज्यादातर भिक्षु ध्यान-भवन में जाते हैं। यह एक पत्थरों से पटा हुआ वर्गाकार कमरा है, जिसके बीच में एक छोटा-सा अठपहलू सिंहासन रखा हुआ है। कमरे में चारों तरफ चबूतरा है जिनपर आसन लगे रहते हैं। उनपर भिक्षु पद्मासन लगाकर बैठ जाते हैं। ढोल की आवाज पर सब उठ खड़े होते हैं और सिंहासन के चारों तरफ धीरे धीरे घूमना शुरू करते हैं। क्रमशः उनकी चाल तेज होती जाती है और हाथों को भी घुमाते जाते हैं ताकि इस कसरत से उनके इधर-उधर के विचार निकल जायँ। ढोल की दूसरी आवाज पर सब कोई मूर्त्तिवत् खड़े हो जाते हैं और धीरे से नजदीक वाले आसन पर बैठ जाते हैं। एक अगरबत्ती जला दी जाती है और उसके जल जाने तक भिक्षु लोग ध्यान में रहते हैं। जब अगरबत्ती पूरी जल जाती है, तो फिर ढोल बजता है और सब भिक्षु एक एक करके आँगन में आते हैं। सयाने भिक्षु खेत में या रसोई में काम करने जाते हैं और तरुण पठन-पाठन को।

दिन का बाकी हिस्सा [illegible]ी पहले ही की तरह रहता है। ध्यान के बाद भिक्षु काम करने जाते हैं। फिर खा[illegible] ध्यान, थोड़ा आराम, शाम की पूजा, रात का खाना और सोने के पहले फिर [illegible]ध्यान यही दिन का क्रम रहता है।

महीने में चार दिन ध्यान से छुट्टी मिलती है। वह समय कपड़ा धोने, मरम्मत करने आदि में लगाया जाता है। चन्द्रमास का पहला और पन्द्रहवाँ दिन समारोह से मनाया जाता है। उस दिन खाना भी कुछ अच्छा मिलता है। बुद्ध और बोधिसत्त्वों के स्मृति-दिवस भी मनाये जाते हैं। बीमार और मरे हुए लोगों के लिए भी प्रार्थना की जाती है।

वहाँ का अनुशासन बड़ा कठोर है। एक खास अफसर भिक्षुओं में से चुना जाता है जो देखता है कि लोग ठीक ठीक नियम पालन करते हैं या नहीं। जो भिक्षु ध्यान के समय सो जाता है या सवेरे ठीक समय पर नहीं उठता उसे दण्ड दिया जाता है। वहाँ का खाना, कपड़ा सभी सादे से सादा रहता है। खेतों में या मठों में काम बड़ा कठिन है। लेकिन भिक्षु इसे आवश्यक समझते हैं। क्योंकि स्थिर और पवित्र विचार केवल सधे हुए शरीर में ही रहते हैं। बहुत कम लोगों को दण्ड देने का मौका आता है; क्योंकि सब लोग संघ और अपने लिए अच्छे काम करने को उत्सुक रहते हैं।

विशेष अवसरों पर प्रतिदिन के क्रम में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जाता है। हर तीन-चार दिन के बाद एक वर्गाकार टब में पानी गर्म होता है और भिक्षु बारी बारी से नहाते जाते हैं। साबुन नहीं इस्तेमाल किया जाता; क्योंकि उसमें सुगन्धि होती है।

कुछ ऐसे दिन भी हैं जब सूत्रपाठ होता है और उनकी विस्तृत व्याख्या भी की जाती है। इनके अलावा नववर्ष, वसन्त और पतझड़ के उत्सव भी मनाते हैं। भिक्षुओं के सादे दैनिक जीवन में जो सौन्दर्य है उसे वहाँ के प्राकृतिक दृश्य, मूर्तियों के सामने का क्षीण प्रकाश तथा मन्त्र-पाठ का मधुर स्वर दुगुना कर देते हैं। लेकिन उस स्थान का सबसे बड़ा सौन्दर्य वहाँ की चतुर्दिक् शान्ति में है।

आर्यसमाज और अछूतोद्धार

(भदन्त आनन्द कौसल्यायन)

जो एक बार किसी 'जाति' में पैदा हो गया, वह जन्म भर उसी में पड़ा रहे, इस तामसिकता के विरुद्ध देश और समाज के अनेक हितचिन्तकों ने समय समय पर प्रयत्न किए हैं। वर्तमान युग के धार्मिक सम्प्रदायों के प्रयत्नों में आर्य-समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द की प्रेरणा के फलस्वरूप आरम्भ हुए प्रयत्न विशेष रूप से उल्लेख-योग्य हैं। स्वामी दयानन्द ने इस जन्माश्रित वर्ण-व्यवस्था को हिन्दू जाति की "मरण-व्यवस्था" कहा। इसकी जगह गुण-कर्मानुसार वर्ण-व्य[illegible] को चलाने का प्रयत्न किया। उनका कहना था कि प्राचीन काल में भारत में यही व[illegible] प्रचलित थी, जिसे अब फिर पुनर्जीवित करने की जरूरत है। स्वामी दयानन्द [illegible]ब्द-प्रमाण' के माननेवाले थे। जिस बात को वह अपनी बुद्धि से भी देश तथा समाज के लिए कल्याणकारी समझते उसे भी वह बिना वेद और शास्त्र के प्रमाणों के आगे न बढ़ा पाते। स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वर्ण-व्यवस्था और छूत-छात इसलिए अत्यन्त निन्दनीय थी; कि उसी के होने से हिन्दू समाज रसातल को चला जा रहा था और उसी के न होने से पड़ोसी मुसलमान ईसाई समाज उन्नति कर रहा था। हम नहीं कह सकते कि यदि अनेक "अछूतों" के ईसाई वा मुसलमान धर्म ग्रहण करने के दृश्य स्वामी दयानन्द की दृष्टि के सामने न होते, तो इस 'अछूतपन' इस 'ऊँच-नीच' में जो घोर-अन्याय का भाव निहित है, वह स्वामी दयानन्द का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता वा नहीं?

उनकी वर्ण-व्यवस्था को सुधारने तथा छूत-छात को मिटाने की चिन्ता प्रधान रूप से हिन्दूजाति की हित-चिंता, हिन्दूजाति के स्वार्थों की रक्षा की चिन्ता का परिणाम थी। हो सकता है कि उसमें मानवी वेदना की प्रेरणा भी रही हो; लेकिन उसकी अपील मुख्यतः जातिगत स्वार्थपरक ही रही।

नवीन आन्दोलनों के लिए पञ्जाब हमेशा एक उर्वरा भूमि सिद्ध हुआ। स्वामी दयानन्द के द्वारा संस्थापित आर्य-समाज को भी पञ्जाब में बड़ी सफलता मिली; वहाँ के गुरुकुल तथा डी० ए० वी० स्कूलों और कालेज की व्यापकता इसका प्रमाण है। आर्य-समाज की ओर से अछूतोद्धार अथवा दलितोद्धार के अनेक प्रयत्न हुए और पुरानी वर्ण-व्यवस्था को हटाकर नई वर्ण-व्यवस्था स्थापित करने के भी। दलितोद्धार के प्रयत्नों में आर्य-समाज को कुछ सफलता मिली भी समझी जा सकती है; पुरानी वर्ण-व्यवस्था का विरोध कर नई वर्ण-व्यवस्था स्थापित करने के प्रयत्न में बिल्कुल नहीं। अछूतोद्धार वा दलितोद्धार करने के लिए आर्य-समाज ने "शुद्धि" शस्त्र अपनाया। दूसरों को अछूत समझनेवालों तथा अछूत समझे जानेवालों के मन में कोई परिवर्तन-विशेष लाने के लिए शायद किसी न किसी संस्कार की जरूरत थी। लेकिन तब वह संस्कार अछूतों का किस लिए? अपने को ऊँची जाति का समझनेवालों ने किस अधिकार से, किस न्याय से अपने को "शुद्ध" तथा दूसरों को "अशुद्ध" करार दिया? शुचिता के नाम पर जिन्होंने दूसरों को अछूत समझा, उनसे बढ़ कर मानसिक मलिनता किसमें होगी? यदि "शुद्धि" की अपेक्षा थी या है तो उन्हीं की "शुद्धि" होनी चाहिए जो दूसरों को "अछूत" समझते हैं।

आर्य-समाज के "शुद्धि"-आन्दोलन का असर अच्छा न हुआ। "अछूतपन" के विरुद्ध जो थोड़ा प्रचार-कार्य हो गया, उतना अंश अच्छा था; लेकिन "अछूतों" की जिन जिन जातियों को आर्यसमाज ने "महाशय" और "आर्य" बनाया वे अपने में नई जातियाँ बन गईं; ठीक वैसे ही जैसे गान्धी जी के "हरिजन"। पंजाब की "अछूत" मानी जानेवाली कुछ जातियों के लोगों को "शुद्ध" करने के लिए न जाने कितना घी और हवन-सामग्री आग में जलाई गई। उस पर भी कोई "शुद्ध" न हुआ। लोगों ने "शुद्ध" हुए लोगों के हाथ से श[illegible] पीए, लड्डू खाए; और "शुद्धि" आन्दोलन की इतिश्री हो गई। उसका एक कुफल य[illegible] हुआ कि कहीं कहीं उन उन जातियों में "शुद्ध हुए" और "शुद्ध नहीं हुए" का नया [illegible] पैदा हो गया; जो आपस में अच्छी कटुता का कारण बना।

अन्य धर्मावलम्बी को अपने धर्म में दीक्षित करने के लिए, "शुद्धि" की बात समझ में आ सकती है, लेकिन आर्य-समाज ने अपने ही धर्मावलम्बियों को अपने ही धर्म में रखने के लिए "शुद्धि" का आविष्कार किया। यह "शुद्धि" सफल न हो सकी, उसका कारण यही है कि आर्य-समाज ने नई वर्ण-व्यवस्था स्थापित करने की कल्पना तो की, लेकिन फँसा रह गया वह पुरानी व्यवस्था के ही कुचक्र में।

आर्य-समाज के संस्थापक ने शायद समझा था कि वह और उनका समाज 'पुरानी बोतलों में नई शराब भरने' में समर्थ होगा। नए सिरे से नए ढङ्ग के ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बना सकेगा; लेकिन इसमें आर्य-समाज बुरी तरह विफल हुआ। अँगुलियों पर गिने जाने लायक कुछ लोगों को "ब्राह्मण" जाति में पैदा न होने पर भी वह "पण्डितजी" अवश्य बना सका; लेकिन शायद एक भी "ब्राह्मण" को वह उसके गुण-कर्मानुसार "शूद्र" न बना सका।

एक पहाड़ी स्टेशन पर गुरुकुल काँगड़ी के दो स्नातक दवा की दुकान करते हैं। मुझे दोनों का आतिथ्य ग्रहण करने का सौभाग्य हुआ। देखा एक गुणकर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था के पक्षपाती हैं, दूसरे विरोधी। कारण जानना चाहा। पता लगा जिन्हें "गुणकर्मानुसार वर्ण-व्यवस्था" ने ब्राह्मण बनाया है, वह उसके पक्षपाती हैं; जो पहले ही से जन्म के 'ब्राह्मण" हैं, वे विरोधी। दोनों की दवा की दुकान है। बताइए कौन ब्राह्मण है, कौन अब्राह्मण ?

गुणकर्मानुसार चातुर्वर्ण्य-व्यवस्था एक कल्पना है, जिसे इतिहास ने न कभी देखा और न अपनी व्यवहार्य कठिनाइयों के कारण कभी देख सकेगा।

काश कि आर्यसमाज अपनी शक्ति को इस चातुर्वर्ण्य "सहस्रशीर्षा" अव्यवस्था के मूलोच्छेद में लगा सकता।*

भगवान् का घर कहाँ है ?

(श्रीयुत आर० एल० सोनी)

मैं भगवान् के घर को कहाँ तलाश करूँ ?

कपिलवस्तु में उन्होंने अपना बचपन बिताया। लेकिन वहाँ मुझे वे दिखाई नहीं देते। पवित्र बोधिवृक्ष के नीचे उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया, किन्तु वे वहाँ भी नहीं मिलते। विहारों में उन्होंने धर्मोपदेश दिये; लेकिन आज वहाँ भी उनका पता नहीं।

भगवान् का घर न कपिलवस्तु में है न बोधि-वृक्[illegible] नीचे। कपिलवस्तु नष्ट हो गया। राजमहल ढह गया। पवित्र वृक्ष दूसरों[illegible]हाथ में है। अनाथपिण्डिक के विहार का, जहाँ उन्होंने वर्षों उपदेश दिया, कहीं पत[illegible]।

तब मैं भगवान् का घर कहाँ तलाश करूँ ? वह ईंटों और सुर्खी-गारा में नहीं, जंगलों में नहीं, लेकिन फिर भी वह विद्यमान है।

कैसे ?

अपने उपदेशों में।

लेकिन कहाँ ?

पवित्र और निर्दोष लोगों के हृदय में, दया और करुणा में। ढाई हजार वर्ष से उनका यह घर खड़ा है; जब कि बहुत मजबूत किले भी गिर गये। भगवान् का मन्दिर लोगों का हृदय है। और मन्दिर गिर सकते हैं, लेकिन जब तक पृथ्वी पर मनुष्य हैं उनका हृदय भी रहेगा और वही भगवान् का घर है।

---

* भदन्त आनन्द कौसल्यायन लिखित "यह छूतछात !" का एक अंश।

'यह छूत-छात' पर एक सम्मति

[भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी लिखित 'यह छूत-छात' ! नामक पुस्तक पर पूज्य महास्थविर बोधानन्दजी ने निम्नलिखित सम्मति भेजने की कृपा की है।]

परम स्नेहास्पद श्री सुमन जी,

आशीर्वाद,

आपकी प्रेषित "यह छूतछात" नामक पुस्तक मिली। पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक की उत्तमता के विषय में कहना ही क्या है। एक तो आनन्दजी के द्वारा लिखी गई, दूसरे आपका सहयोग होने से यह दूसरा संस्करण अत्यन्त हृदयस्पर्शी हुआ। इस संस्करण में 'सुधार के प्रयत्न' के अध्याय बढ़ाकर इसकी उपयोगिता को और भी अधिक बढ़ा दिया है। मुझे तो ऐसा लगता है कि मेरे ही हृदय के भावों को किसी ने सरल, सुन्दर, ललित साहित्यिक भाषा में लिख दिया है।

जन्ममूलक वर्णव्यवस्था के कारण बहुसंख्यक शूद्रों और अछूतों की अवस्था बड़ी दयनीय हुई है। उन्हें धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक और शिक्षा-सम्बन्धी जीवन के विकास के सभी क्षेत्रों में नीचे गिराया गया है—उनके जन्मसिद्ध मानवीय अधिकारों और उच्चाकाङ्क्षाओं को बड़े कौशल और निर्दयता के साथ कुचला गया है। अल्पसंख्यक उच्च जाति के हिन्दू लोग वंशानुक्रम से हजारों वर्षों से जन्मगत वर्णव्यवस्था द्वारा उनके श्रम से अनुचित लाभ उठा रहे हैं। इस महान् धार्मिक और सामाजिक अत्याचार और पापमय रोग को दूर करने के लिए परम चिकित्सक भगवान् बुद्ध हुए थे। भगवान् बुद्ध ने कहा कि न जटा बढ़ाने से, न गोत्र से, न जन्म से ब्राह्मण होता है, जिसमें सत्य और धर्म होता है, वही व्यक्ति पवित्र है और ब्राह्मण है। मैं ब्राह्मणी-माता से पैदा होने के कारण किसी को ब्राह्मण [illegible] कहता। जो रागद्वेष-रहित है, उसे ही मैं ब्राह्मण कहता हूँ। [धम्मपद, ब्राह्मण वग्ग]

न जन्म से कोई शूद्र होता और न ब्राह्मण, कर्म ही के द्वारा शूद्र होता है और कर्म ही के द्वारा ब्राह्मण। [वसल सुत्त २८]

एक दफे आश्वलायन ब्राह्मण के पूछने पर भगवान् बुद्ध ने कहा "आश्वलायन ब्राह्मणों की (जननी) ब्राह्मणियाँ ऋतुमती, गर्भिणी, प्रसूता, स्तन-पान कराती देखी जाती हैं। इस प्रकार योनि से उत्पन्न होने पर भी ब्राह्मण कहते हैं—ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न ब्रह्मा के दायाद हैं। क्या तुमने सुना है, कि यवन और कम्बोज तथा दूसरे भी सीमान्त-देशों में आर्य (स्वतंत्र) और दास (गुलाम) दो ही वर्ण हैं। उसमें भी आर्य से दास हो सकता है, दास से आर्य हो सकता है।"

आश्वलायन—"हाँ, सुना है।"

बुद्ध—"तो ब्राह्मणों को यह कहने का क्या अधिकार है कि ब्राह्मण ही श्रेष्ठ वर्ण हैं।" [अस्सलायण सुत्त]

इस प्रकार परम चिकित्सिक भगवान् बुद्ध के निरन्तर प्रयत्न करने का फल यह हुआ कि मौर्य लोग भारतव्यापी साम्राज्य स्थापित करने में समर्थ हुए। इसी कारण

मौर्यकाल को स्वर्ण-युग कहते हैं, परन्तु शोषकों की कुटिल नीति और कुचक्र के कारण भारत का फिर वही पुराना रोग उभड़ आया। बल्कि गहराई से विचार करने पर प्रतीत होता है कि परिस्थिति पहले से और भी भयानक हो गई है। अब तो इन शूद्रों और अछूतों के जगाने की चेष्टा करे तो उसको हिन्दू-हितों का विरोधी कहा जाता है। हिन्दू धर्म के विधाताओं का कहना है कि बौद्ध और सिक्ख वगैरह यदि कुछ करना चाहें तो मुसलमान और ईसाइयों में काम करने का अपना क्षेत्र बनावें, अछूत और शूद्रों के उठाने में हाथ न लगावें। क्या उलटी बात है कि घर में अँधेरा रहने दो और मसजिद में चिराग जलाओ, खूब!

मुझे आपकी "यह छूतछात" पुस्तक पढ़कर बहुत ही संतोष हुआ। मुझे विश्वास है कि आप लोग सच्ची लगन से काम करेंगे और सफल होंगे।*

आपका शुभचिन्तक—

बोधानन्द महास्थविर।

समाचार-संग्रह

—लंदन के बौद्ध-धर्म प्रचार-सभा के पुस्तकालय को जर्मन बम से बहुत नुकसान पहुँचा है। पुस्तकालय की पुस्तकें सड़कों पर बिखर गईं।

—युगोस्लाविया में रहनेवाले रूसी बौद्धों के लिए वहाँ के राजा अलेक्जेंडर ने बेलग्रेड में एक बौद्ध-विहार बनवाया था। बेलग्रेड की उस सड़क का नाम भी 'बुद्धिस्ट रोड' रखा गया।

लंदन पर जर्मनों की अन्धाधुन्ध बम वर्षा के फलस्वरूप वहाँ के बौद्ध-गृह का साप्ताहिक धर्मोपदेश उचित समय और स्थान पर नहीं हो पाता था। किन्तु अब पुनः नियमित रूप से सभा और धर्मोपदेश होने लगा है।

—महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्रीयुत देव[illegible]लीसिंह कुछ जरूरी कामों से लंका गये हैं। यद्यपि आपका स्वास्थ्य इस समय [illegible] अच्छा नहीं है, फिर भी कार्य की अधिकता वश आप शीघ्र हिन्दुस्तान लौटनेवाले हैं।

—महाबोधिसभा की स्वर्ण-जयन्ती महोत्सव की तैयारी अच्छी तरह चल रही है। श्रीयुत डा० कालीदास नाग महोत्सव-समिति के अवैतनिक मंत्री नियुक्त हुए हैं।

—महाबोधि सभा की ओर से कलकत्ता में एक अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि-गृह बनाने का आयोजन हो रहा है।

महाबोधि सभा—स्वर्ण-जयन्ती समिति को निम्नलिखित सज्जनों ने इस प्रकार दान दिये हैं:—(गत मास के बाद की सूची)

(१) श्रीमती ची किम हो (पेनांग) १०० रु० (२) श्रीमती यी सीव इयम (पेनांग) १०० रु० (३) श्री तो खा चीं (पेनांग) १०० रु० (४) श्री बी० बी० चन्द्र (पटना) १०० रु० (५) श्री इन्द्रप्रकाश (दिल्ली) १० रु० (६) कुमारी सिदनी (कलकत्ता) १० रु० (७) श्री स० राजा राव (बेजवदा) २० रु० (८) श्री बी०

* 'यह छूतछात !' नाम की पुस्तक "धर्म-दूत" कार्यालय से मिल सकती है। कीमत डाक व्यय सहित चार आने। चार आने का स्टाम्प भेजकर भी किताब मँगाई जा सकती है।

एस० चौहान (अजमेर) १५ रु० (९) म० बो० सभा की अजमेर शाखा के प्रतिनिधि १० रु० (१०) श्री हिरेन्द्रनाथ दत्त (कलकत्ता) १० रु० (११) प्रो० मिगनर कासर, रास (अमेरिका) १० रु० (१२) श्रीमती ऊ फेक हू (पेनांग) १० रु० (१३) श्री पी० डब्लु० लाडेन ला (दार्जिलिंग) १० रु० (१४) श्री उपो खो (बर्मा) १० रु० (१५) श्री ए० सी० घोष (पटना) १० रु० (१६) श्री जस्टिन कोतलावला (कोलम्बो) ३५ रु० (१७) श्रीनारायणदासजी बजोरिया (कलकत्ता) १० रु० (१८) श्री उ० डी० पी० धर्मरत्न (लंका) १० रु० (१९) श्री जी० जी० क्रिंदर (राँची) १० रु० (२०) श्री वसिल क्रम्प (राँची) १० रु० ।

धर्मपाल स्मारक कोष तथा जयन्ती स्मारक ग्रंथ के लिए :—(१) श्री भवानी चरण ला (कलकत्ता) ५०० रु० (२) राय बहादुर श्री राधाकृष्ण जालान (पटना) २५० रु० (३) श्री बहादुर सिंहजी सिंघी (कलकत्ता) ३५० रु० (४) श्रीमती तान चू लि ५० रु० (५) श्री तौ खा चीं द्वारा पेनांग में जमा किया गया ५५ रु० ।

———

शील या महिमा

(एक धर्मप्रेमी)

विशुद्धिमार्ग शीलया महिमा थुगुप्रकारं धयातलः—

सासने कुलपुत्तानं पतिट्ठा नत्थि यं विना ।
आनिसंसपरिच्छेदं तस्स सीलस्स को वदे ? ॥

गुगु विना जा=गुगु[illegible]पदेकं कुलपुत्रपिन्तः शासने (=बौद्धधर्म) प्रतिष्ठित (=सफल) ज्वीमखु, उगु शी[illegible]फल गुलि दु, थुके यातः सुनां धाय् फु ? ।

न गङ्गा यमुना चापि सरभू वा सरस्सति,
निन्नगा वाचिरवती मही वापि महानदी ।
सक्कुणन्ति विसोधेतुं तं मलं इध पाणिनं,
विसोधयति सत्तानं यं वे सीलजलं मलं ॥

गंगा, यमुना, सरभू, सरस्वति, अचिरवती, मही अथवा महानदी या लखं हेनं प्राणी-पिनिगु गुगुखः मल (=पाप) यातः सिला छ्वाय् फैमखु उजागु मल यातः नं शीलरूपी लखं विशुद्ध=परिशुद्ध ज्वीक सिला छ्वाय् फु ।

न तं सजलदा वाता न चापि हरिचन्दनं,
नेव हारा न मणयो न चन्दकि णङ्कुरा ।
समयन्तीध सत्तानं परिळाहं सुरक्खितं,
यं समेति इदं अरियं सीलं अच्चन्तसीतलं ॥

जलं पूर्णगु (मेघयुक्त) वायु, रक्त चन्दन, हार, मणि-माणिक्य वा चन्द्रमा या सुशीतल किरणं नं प्राणी पिनिगु दुःख: ज्वाला (=ताप) यातः शान्त याय् फैमखु, जुगु ज्वाला यातः अत्यन्त शीतल श्रेष्ठ शील यातयथार्थ थें प्रतिपालन यात धासा शान्त याय् फयू।

सीलगन्धसमो गन्धो कुतो नाम भविस्सति।
यो समं अनुवाते च पटिवाते च वायति॥

शीलगन्ध या समानं मेगु छु गन्धदु ? वायु या नापं नं हानं वायु या विपरित नं वने फुगु ? अर्थात् पुष्प आदि या सुगन्ध गुखे फे वनी उखे हे वनी; परं शीलवान् या प्रशंसा न्ह्याखे नं वने फु।

सग्गारोहणसोपानं अञ्ञं सीलसमं कुतो ?
द्वारं वा पन निब्बान-नगरस्स पवेसने॥

शीलया समानं स्वर्गारोहण याय्गु (=स्वर्ग थाहाँ वनेगु) मेगु स्वाहान्हे छु दई ! निर्वाण रूपी नगरे द्वाहाँ वनेगु द्वार रूपी शील खः।

सोभन्तेवं न राजानो मुत्तामणि-विभूसिता।
यथा सोभन्ति यतिनो सीलभूसन-भूसिता॥

गुगुप्रकारं शीलरूपी आभूषणं (=तिसां) तिया च्वम्ह यति (=भिक्षु) शोभा दुगु खः, उगु प्रकारं मुक्तामणिं विभूषित (=तिया चोंम्ह) राजाहे जूसां शोभा दै मखु।

अत्तानुवादादिभयं विद्धंसयति सब्बसो।
जनेति कित्तिहासञ्च सीलं सील[illegible] सदा॥

शीलवान पुरुष यातः शीलं निन्दादि या भय छ[illegible] मदेक फुका विय। हानं सदानं उम्हसयातः आनन्द वो कीर्त्ति वढेयाना वियू।

गुणानं मूलभूतस्स दोसानं बलघातिनो।
इति सीलस्स विञ्ञेय्य आनिसंसकथामुखं॥

दोषादिया बल यातः नाश याइम्ह, हानं गुणादि या मूल कारण शील या माहात्म्य थुलि-थन-कने धुन।

सूचना:—महाबोधि सभा ने नेवारी भाषा में दो पुस्तकें प्रकाशित की हैं। पहली पुस्तक है **पूजा विधि**। इस पुस्तक में त्रिरत्न-वन्दना और पूजा आदि की विधि तथा व्याख्या है। दूसरी पुस्तक है **शील वो मैत्री भावना**। इसमें शरणागमण, पञ्चशील और मैत्री भावना की व्याख्या की गई है। पूजा-विधि का मूल्य दो आने। शील वो मैत्री भावना का मूल्य दस पैसे।

अनिच्चावत संखारा

आह ! श्रद्धेय वरसम्बोधिजी

अभी बर्मा से खबर मिली है कि महास्थविर वरसम्बोधिजी अब इस संसार में नहीं रहे। आप लगभग २५ वर्ष तक भारत में रहकर हमें तथागत का धर्म-सन्देश सुनाते रहे। मातृभाषा बर्मी होते हुए भी आपने बौद्ध दर्शन की कठिन पुस्तक 'अभिधम्मत्थसङ्गहो' की टीका हिन्दी में लिखी। आप आयुर्वेद के अच्छे ज्ञाता थे। इन्हीं गुणों के कारण कितने ही मुसलमान भी आपके भक्त हो गये थे। आ[illegible] कुछ मास पूर्व आँख की दवा[illegible]ने के लिए बर्मा गये हुए थे जह[illegible]-रिया से उन्होंने शरीरत्याग किया। आपके निधन से धर्म-दूत परिवार को बहुत धक्का पहुँचा है। हमें आपकी याद बहुत दिनों तक बनी रहेगी।

विश्वकवि का स्वर्गारोहण

सात अगस्त को कलकत्ता में विश्वकवि डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का देहान्त हो गया। आपके निधन से न केवल भारत ने बल्कि विश्व ने एक महान् रत्न खो दिया। आप भारतीय संस्कृति, साहित्य और कला के महान् उन्नायकों में से थे। भगवान् तथागत की शिक्षा पर आपकी अटूट श्रद्धा थी। बौद्ध विद्यार्थियों के लिए आपकी संस्था शान्तिनिकेतन का द्वार सदा खुला रहा। आपकी कविताओं में से अनेक सुन्दर रचनाएँ भगवान् बुद्ध के चरणों में अर्पित पुष्प हैं। आप के निधन से आज सारा बौद्ध संसार शोक-मग्न है। इस अवसर पर धर्मदूत-परिवार आपके शोक-सन्तप्त कुटुम्ब के साथ दुःख प्रकट करता है।

रजिस्ट्री को संख्या ए० ७९०

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धर्म-दूत

भगवान् बुद्ध

वर्ष ६
अंक ८
सं० ६६

कार्तिक बु० सं० २४८५
वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
एक प्रति का –)

विषय-सूची

'यह छूतछात' पर एक और सम्मति

हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सन्तरामजी बी० ए० लिखते हैं, "यह छूतछात नाम की पुस्तक क्या है, हिन्दू-मनोवृत्ति का छायाचित्र है। आनन्दजी ने सवर्ण हिन्दुओं की कलई खोलकर रख दी है। ऐसी उपयोगी पुस्तक लिखकर उन्होंने हिन्दू-राष्ट्र का बड़ा उपकार किया है। मुझे तो ऐसा जान पड़ा मानों आनन्द जी ने मेरे ही हृदय के उद्‌गारों को सुन्दर और सुचारु रूप से लेखबद्ध कर दिया है। इसकी वर्णन-शैली बड़ी रोचक है। **मैं चाहता हूँ प्रत्येक हिन्दू इसको एक बार अवश्य पढ़े।** ऐसी उत्तम पुस्तक लिखने के लिए मेरी ओर से आनन्दजी को बधाई दें। इस पुस्तक का कुछ अंश उर्दू "क्रान्ति" में छाप रहा हूँ।"

चार आने का स्टाम्प भेजकर 'धर्म-दूत' कार्यालय, सारनाथ (बनारस) से पुस्तक मँगाई जा सकती है।

बौद्ध-जगत्

महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्रीयुत देवप्रिय वली सिंह लङ्का से भारत लौट आये। लङ्का में आपने अनेक व्याख्यान दिये और कलकत्ता में धर्मपाल अतिथिशाला के लिए कुछ सहायता भी प्राप्त की। २८ सितम्बर को आप कालीकट आये। यहाँ आपने **महाबोधि बौद्ध मिशन** का निरीक्षण किया और "संसार को भारत की महान् देन" विषय पर एक व्याख्यान दिया। ३० सितम्बर को आप भिक्षु धर्मस्कन्ध जी के साथ मनूर पधारे। वहाँ आपने दानवीर सेठ जुगलकिशोर बिड़ला जी की सहायता से बने बौद्ध विद्यालय का उद्‌घाटन किया। इस विद्यालय का नाम है "विद्योदय विद्यालय"। इसके बाद देवप्रिय जी ने विद्यालय के अहाते में बोधि-वृक्ष लगाया। फिर बंगलोर आकर आपने यूनिवर्सल बुद्ध सोसाइटी का निरीक्षण किया। तत्पश्चात् मद्रास के महाबोधि आश्रम का निरीक्षण करके छः अक्टूबर को कलकता लौट आये।

कलकत्ता के मेयर श्रीयुत प० न० ब्रह्म ने अगस्त में महाबोधि सभा के प्रधान कार्यालय (कोलम्बो) का निरीक्षण किया।

महाबोधि सभा के प्रधान मंत्री श्रीदेवप्रियजी ११ अक्टूबर को सारनाथ पधारे और २५ को बुद्धगया होते हुए कलकत्ता लौट गये।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, नवम्बर बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४१ | अंक ८

बुद्ध-वचन

जो अपनी विवाहिता स्त्री से सन्तुष्ट न होकर वेश्याओं से सम्बन्ध जोड़ता है और दूसरे की स्त्री की ओर बुरी दृष्टि से देखता है, उसका पतन होता है।

जो बृद्धावस्था में युवती स्त्री से शादी करता है उसका पतन होता है।

जो रंडीबाज़, शराबी, जुआरी है और जो कुछ कमाता है उसे इसी में ख़र्च करता है, उसका पतन होता है।

जो जाति, धन और गोत्र का गर्व करके अपने जाति बिरादर का अपमान करता है उसका पतन होता है।

जो आदमी बहुत सम्पत्ति और खाने-पीने की चीजों को जमा करके अकेले ही खाता है, उसका पतन होता है।

जो समर्थ होने पर भी बूढ़े माँ-बाप का भरण-पोषण नहीं करता, उसका पतन होता है।

जो मनुष्य दुर्व्यसनी तथा फिजूलखर्च स्त्री या पुरुष को अधिकार प्रदान करता है, उसका पतन होता है।

वे कौन थे ?

(श्री प्रियदर्शी)

सारनाथ की परम पवित्र भूमि पर आज से लगभग २५०० वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने अपने शिष्यों को संबोधन करते हुए कहा था 'भिक्षुओ ! जनता के हित के लिए, उनको सुख पहुँचाने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो-विचरण करो। भिक्षुओ ! आदि, मध्य और अन्त में कल्याण करनेवाले धर्म का उपदेश करो।'

बुद्ध की इस कर्त्तव्यभरी वाणी का उनके शिष्यों ने अक्षरशः पालन किया। बुद्ध की वाणी में वह ओज, वह प्रसाद, वह गुण और शक्ति थी जो एक पतनोन्मुख समाज में जागृति की लहर पैदा कर सकती थी। अपने आचार्य के आज्ञानुसार सिर्फ मुट्ठी भर—केवल उनसठ—भिक्षु भिन्न भिन्न दिशाओं में बुद्ध के करुणा, मैत्री और दया भरे सन्देश को फैलाने के लिए चल पड़े। भगवान् बुद्ध के आदर्श और उच्च शिक्षाओं से प्रभावित हो उन कर्मठ भिक्षुओं ने भारत की अलंघ्य प्राकृतिक सीमाओं को पार कर अनेक ज्ञात और अज्ञात देशों में निर्मल आर्य-ज्ञान की ज्योति फैलाई। हिमालय की उत्तुंग चोटी, गोबी का भयंकर रेगिस्तान, हिन्द महासागर की तीव्र धारा और पीत सागर की अपार जलराशि भारत के उन सपूतों को तिब्बत, तुर्किस्तान, अफगानिस्तान, जावा, चम्पा, कम्बोडिया, बर्मा, श्याम, चीन, जापान, कोरिया, मंगोलिया आदि एशियाई देशों तथा मिस्र, मैसिडोनिया, सीरिया आदि सुदूर देशों तक अपना संदेश पहुँचाने में बाधा न डाल सके।

यह हमारे उस समय के विशाल भारत की रूप-रेखा है, जब संसार ज्ञान और सभ्यता से कोसों दूर—घोर अन्धकार में था। इस नवीन ज्ञान और सभ्यता का उदय इतिहास की कोई आकस्मिक घटना नहीं; यह उस महान् आत्मा की अनुभूति थी और थी संसार के प्राणिमात्र के प्रति मंगल-भावना। उस महापुरुष के पास स्वार्थ की चर्चा नहीं, सेवा के लिए कीमत नहीं और पतन के लिए स्थान नहीं।

निःस्वार्थ सेवा और उच्च चरित्र के बल पर ही उस विशाल आर्य-धर्मसाम्राज्य की स्थापना हुई। उस श्रेष्ठ साम्राज्य का भग्नावशेष आज भी किसी जाति और समाज के लिए गौरव की वस्तु हो सकती है।

बुद्ध के सामने एक महान् आदर्श था, एक महान् उद्देश्य था। उन्होंने विश्व में एक क्रांति की, पर आग लगाकर और रक्त बहाकर नहीं; बल्कि मानव मात्र में प्रेम और करुणा की धारा बहाकर। वे दया के अवतार थे, पर थे कठोर सत्यवादी। उनका एक उपदेश सुनकर हजारों आदमी उनके अनुगामी हो जाते थे—यह थी उनके वचन की विशेषता। वे बोलते थे जन साधारण की भाषा में, किन्तु मनुष्य के हृदय में जाकर। वे आर्य-धर्म के प्रवर्तक थे; किन्तु उनका आर्य-धर्म केवल ब्राह्मण या क्षत्रिय भर के लिए नहीं था—वह मानव मात्र के लिए था। उनकी वाणी का यथार्थ विकास हुआ अशोक के स्वरों में। सारनाथ के विमल आदेश का पालन किया अशोक के विद्रोही हृदय ने।

भारत में बौद्धधर्म के पुनरुद्धारक

स्वर्गीय अनागारिक धर्मपाल जी

धर्मपाल जी का जीवन मध्यकालीन युग की एक कहानी की तरह है। उन्होंने आजकल के रुपये-पैसेवाले युग में धन को ठोकर मार, संसार में बौद्ध-धर्म का प्रचार करने का दृढ़ व्रत लिया था। आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् बुद्ध ने विश्व को जो पवित्र सन्देश दिया था, उसे ही धर्मपाल जी पुनः संसार में फैलाना चाहते थे। उनके ही अथक प्रयास का फल है कि **बुद्धगया** में बौद्धों को भी कुछ स्थान मिला और सारनाथ में अशोककालीन बौद्ध शान-शौकत के खण्डहरों में करुणा का, दया और मैत्री का मूर्तिस्वरूप **मूलगन्ध कुटी विहार** खड़ा हो सका। उन्होंने एक अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध विश्वविद्यालय की भी कल्पना की, जहाँ कि भिन्न भिन्न बौद्ध सम्प्रदाय मिलकर पृथ्वी पर बुद्ध का दया-धर्म फैला सकें।

धर्मपाल जी का जन्म कोलम्बो में सितम्बर १८६५ में हुआ। उनका कुटुम्ब लङ्का के संभ्रांत और धनी कुटुम्बों में से था। उन दिनों लङ्का में ईसाई पादरियों का बोलबाला था। राजनीतिक और आर्थिक सुविधाओं ने बहुतों को ईसाई धर्म स्वीकार करने पर बाध्य किया। उस समय अपने पूर्वपुरुषों के धर्म में विश्वास करना न तो फैशन ही था न अच्छी नीति ही समझी जाती थी। अनागारिक की स्वतन्त्र प्रवृत्ति और नैतिक वीरता अवश्य ही उनके पिता **मुदालियर हेवावितारण** की देन थी।

समय के अनुसार, उनकी शिक्षा भी ईसाई स्कूलों में ही हुई। यह एक आश्चर्य की बात है कि अपने आगे के जीवन में जिस मनुष्य ने लङ्का से ईसाइयों का प्रभाव घटाने का इतना प्रयत्न किया, वही विद्यार्थी-जीवन में अपने स्कूल में बाइबिल का सबसे अच्छा विद्यार्थी था।

कालेज छोड़ने के बाद, तुरन्त ही उन्हें सरकारी नौकरी मिल गई। लेकिन उनका और सरकार का यह सम्बन्ध अधिक दिनों तक नहीं निभ सका। दफ़्तर के कामों में व्यस्त रहते हुए ही उन्होंने बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। उसी समय **मैडम ब्लैवाट्स्की** और **कर्नल आलकाट** लङ्का पहुँचे, जिससे धर्मपालजी के जीवन में एक महान् परिवर्तन हुआ। कर्नल आलकाट ने बड़ी योग्यता और लगन से लङ्का में बौद्ध-धर्म के पुनरुत्थान का काम शुरू किया। उन्होंने सारे सिंहलद्वीप में घूम-घूमकर बौद्धधर्म पर व्याख्यान दिये और सिंहालियों का ध्यान उनके अतीत गौरव की ओर आकर्षित किया। ईसाई धर्म की मोह-निद्रा में पड़े हुए लोगों की नींद टूटी और उनमें जागृति की एक नई लहर सी फैल गई।

गोरे आदमी काले लोगों के धर्म की तारीफ करें, यह एक अजीब बात थी। श्री धर्मपाल जी कर्नल आलकाट के सम्पर्क में आये। वे उनके साथ घूम-घूमकर उनके व्याख्यानों का सिंहल की भाषा में अनुवाद करते थे।

१८८६ में उन्होंने नौकरी छोड़ दी और अपना सारा जीवन धर्म-प्रचार के लिए उत्सर्ग कर दिया। कर्नल आलकाट के साथ उन्होंने सन् १८९० तक काम किया। उन्होंने अपने देशवासियों के हृदय में यह बात बैठा दी कि उनका अतीत गौरव ईसाइयत के झूठे आडम्बर से कहीं श्रेष्ठ है। उनका कहना था कि एशियावाले पश्चिम के उस सिद्धान्त से ऊँचे ऊपर हैं, जहाँ कि 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' ही कार्यरूप में प्रचलित है। इस प्रकार नौजवान धर्मपाल लङ्का में बौद्ध धर्म के पुनरुत्थान का अग्रदूत समझा जाने लगा।

दिसम्बर, १८९० में वे **बुद्धगया** आये। वहाँ के परम पवित्र बौद्ध मन्दिर की दुर्दशा देखकर उनका हृदय दुःख से भर गया। उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि बुद्ध-गया का मन्दिर पुनः बौद्धों के हाथ सौंपकर ही दम लेंगे। इसी कठोर निश्चय के अनुसार सन् १८९१ से १९१० तक वे उस पवित्र भूमि पर बौद्धों के अधिकार के लिए लगातार चेष्टा करते रहे। बार-बार असफल होने पर भी उन्होंने हिम्मत नहीं हारी। अपने मिशन में उनका पूरा विश्वास था। धीरे-धीरे उनका नाम हिन्दुस्तान में मशहूर हो

गया। बहुत से हिन्दुओं को भी उनका पक्ष न्याय-सङ्गत जँचा। लेकिन कानूनी दिक्कतों की वजह से उन्हें विशेष सफलता नहीं मिल सकी।

उस समय यह समझा जाता था कि पूर्वीय लोगों में किसी कार्य के संचालन की क्षमता नहीं होती। धर्मपाल जी ने १८६२ में बुद्धगया में **अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन** करके इस धारणा को गलत साबित कर दिया। उस सम्मेलन में एशिया के सभी देशों के लोग शामिल हुए थे।

इसके एक साल पहले ही मई सन् १८६१ में उनके अथक परिश्रम के फल-स्वरूप सिंहल द्वीप में **महाबोधि सभा** की स्थापना हुई। यहीं से उनके अन्तर्राष्ट्रीय मिशन का काम शुरू होता है। सन् १८६२ में अँगरेजी में **महाबोधि जर्नल** का प्रकाशन शुरू हुआ, जो धर्मपालजी की देख-रेख में दुनिया में बौद्ध धर्म के प्रचार में बहुत सहायक हुआ। यह पत्रिका अब भी कलकत्ते से निकलती है। इसी के द्वारा **डा० बरोज** का ध्यान उनकी तरफ आकर्षित हुआ और वे सन् १८६३ के शिकागो में **सर्वधर्म-सम्मेलन** में निमन्त्रित किये गये। रहस्यवादी पूर्व ने शिकागो में लोगों के ऊपर जादू का असर डाला। धर्मपाल जी तथा उनके हिन्दू मित्र और साथी तेजस्वी स्वामी विवेकानन्द जी की वजह से उस सभा में एशियावालों का, ख़ासकर हिन्दुस्तान का ही बोलबाला रहा। अमेरिका के लोग नवजवान लम्बे घनी दाढ़ीवाले धर्मपाल की तुलना ईसामसीह से करने लगे।

इस समय तक धर्मपाल जी की काफी ख्याति हो चुकी थी। **होनोलूलू, जापान और चीन** होते हुए लङ्का लौटने के पहले उन्होंने इन देशों में अनेक व्याख्यान दिये। होनोलूलू में श्रीमती मेरी फोस्टर से उनकी भेंट हुई। श्रीमती फोस्टर को उनके व्याख्यानों से अपार शान्ति मिली। उनके लाखों रुपये के दान के फलस्वरूप आज हम कलकत्ते में **धर्मराजिक विहार**, सारनाथ में **मूलगन्ध कुटी विहार**, लङ्का में **फोस्टर राबिन्सन** अस्पताल और अनेक पाठशालाएँ, **इँगलैंड में बुद्धिस्ट मिशन** आदि अनेक संस्थाओं को देखते हैं।

अनागारिक धर्मपाल जी को गया के महन्त के झगड़े में बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ीं और उन कष्टों का असर बाद में उनके स्वास्थ्य पर भी काफी पड़ा।

१६११ में धर्मपाल जी सिंहल वापस गये। वहाँ वे सत्य और न्याय के विजेता घोषित किये गये। लोगों को उनमें **मैत्रेय बुद्ध** का आभास मिलने लगा। उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति अपने पवित्र उद्देश्य की पूर्ति में लगा दी। और बहुत सी निःशुल्क पाठशालाएँ खोलीं तथा पाली के अध्ययन के लिए अनेक छात्रवृत्तियाँ दीं।

सन् १६१२ में फिर एक दफे वे पृथ्वी पर्यटन के लिए निकले। वे चीन और जापान भी गये। वहाँ उनका बड़ी धूम धाम से स्वागत हुआ। १६१४ में वे कलकत्ता लौट आये और हिन्दुस्तान में बौद्धधर्म के प्रचार में जुट गये।

१६१५ में लङ्का में बौद्धों और मुसलमानों के बीच झगड़ा हो जाने के कारण सरकार ने उन्हें कलकत्ते में नजरबन्द कर दिया। किन्तु अपने नजरबन्दी जीवन में भी

उन्हें विश्राम कहाँ ? वे सतत जागरूक रहनेवाले पुरुष थे। उन्होंने कलकत्ते में रहकर ही अपना प्रचार-कार्य जारी रखा।

१६२० में **मर्क्विस आफ जेटलैंड** द्वारा कलकत्ते में **श्री धर्मराजिक विहार** का उद्घाटन हुआ। १६२४ में श्रीमती फोस्टर की सहायता से लन्दन में **बुद्धिस्ट मिशन** की स्थापना हुई। बाद में **पेरिस** और **बर्लिन** में भी मिशन की शाखाएँ खोली गईं। सन् १६२५ में न्यूयार्क में **अमेरिकन महाबोधि सभा** बनी जिसकी शाखाएँ **शिकागो** और **सैन फ्रान्सिस्को** में भी खुलीं।

उनके इस त्यागमय जीवन की पूर्णता सारनाथ के **मूलगन्धकुटी विहार** में है जो कि नवीन बौद्ध कला का उत्कृष्ट नमूना है। सारनाथ ही बौद्ध धर्म का उद्गमस्थान है। और इस विहार के बन जाने से वह फिर अपने पुराने गौरव को पा सका है। अब तो सारनाथ संसार भर के बौद्धों का एक उपनिवेश हो गया है।

१६ जनवरी १९३२ को अनागारिक धर्मपाल जी ने **उपसम्पदा** (= भिक्षु-संन्यास) ग्रहण की। पवित्र ऋषिपत्तन में, उसी साल मरते समय उन्होंने कहा,—"**मैं जल्दी मर जाऊँ और फिर जन्म लूँ। मैं चाहता हूँ कि मैं पचीसों बार जन्म लूँ और पृथ्वी पर भगवान् बुद्ध के धर्म का प्रचार करूँ।**"

राजत्व

(अनु० श्रीनारायण चौधरी, एम० ए०)

दृष्ट्वा विमिश्रां सुखदुःखतां मे राज्यं च दास्यं च मतं समानम्।
नित्यं हसत्येव हि नैव राजा न चापि संतप्यत एव दासः ॥४४॥

दुःख और सुख को मिला हुआ देखकर राज्य और दासत्व को मैं समान मानता हूँ। न तो राजा ही नित्य हँसता है और न दास ही नित्य संतप्त होता है।

आज्ञा नृपत्वेऽभ्यधिकेति यत्स्यान्महान्ति दुःखान्यत एव राज्ञः।
आसङ्गकाष्ठप्रतिमो हि राजा लोकस्य हेतोः परिखेदमेति ॥४५॥

क्योंकि राजत्व में आज्ञा अधिक है, इसी लिए तो राजा को बड़े बड़े दुःख होते हैं। आसङ्ग-काष्ठ (?) के समान राजा संसार के लिए खेद को प्राप्त होता है।

राज्ये नृपस्त्यागिनि बह्वमित्रे विश्वासमागच्छति चेद्विपन्नः।
अथापि विश्रम्भमुपैति नेह किं नाम सौख्यं चकितस्य राज्ञः ॥४६॥

त्याग करनेवाले (क्षणभंगुर) और बहुत शत्रुओं से भरे राज्य में यदि (वह) विश्वास करता है, तो मरता है; और यदि संसार में विश्वास नहीं करता है, तो चकित रहने वाले राजा को सुख क्या है ?

यदा च जित्वापि महीं समग्रां वासाय दृष्टं पुरमेकमेव।
तत्रापि चैकं भवनं निषेव्यं श्रमः परार्थे ननु राजभावः ॥४७॥

और जब कि सारी पृथ्वी को जीत कर भी रहने के लिए एक ही नगर को देखता है और उसमें भी एक ही महल का सेवन करना पड़ता है, (तब) अवश्य ही राजत्व (केवल) दूसरों के लिए श्रम है।

राज्ञोऽपि वासो युगमेकमेव क्षुत्संनिरोधाय तथान्नमात्रा।
शय्या तथैकासनमेकमेव शेषा विशेषा नृपतेर्मदाय ॥४८॥

राजा के लिए भी एक ही जोड़ा वस्त्र, उसी तरह क्षुधा-निवृत्ति के लिए कुछ अन्न, एक शय्या और एक ही आसन (आवश्यक है); राजा की शेष विशेषताएँ तो मद (पैदा करने) के लिए हैं।

तुष्ट्यर्थमेतच्च फलं यदीष्टम् ऋतेऽपि राज्यान्मम तुष्टिरस्ति।
तुष्टौ च सत्यां पुरुषस्य लोके सर्वे विशेषा ननु निर्विशेषाः ॥४९॥

और यदि संतोष के लिए यह (राज्यरूपी) फल इष्ट है, तो राज्य के बिना भी मुझे संतोष है। और संसार में मनुष्य को संतोष हो जाने पर सब विशेषताएँ विशेषता रहित हैं।*

——

तिब्बत की राजधानी—ल्हासा

(श्री लामा गेशे सम्फेल)

ल्हासा, तिब्बत के बीचोबीच ब्रह्मपुत्र के, जिसको तिब्बती में सांग-पो नदी कहते हैं, ऊपरी किनारे बसा हुआ है। इसकी जन-संख्या १५०००० है। नदी में यहाँ किश्तियाँ चलती हैं। वे चमड़े की रंग-बिरंगी बनी होती हैं; लेकिन इतनी मजबूत होती हैं कि आदमी और माल आसानी से ढो सकें।

ल्हासा तिब्बत की राजधानी है। तिब्बत की सरकार यहीं रहती है। **दलाई लामा** भी यहीं रहते हैं। आपका महल **पो-ता-ला** शहर के बाहर उत्तर-पश्चिम में लाल पहाड़ी पर बना हुआ है। यह एक बहुत ही विशाल और भव्य भवन है। यह पँचमंजिला है, जिसकी नीचेवाली मंजिल सबसे बड़ी है। इसकी छत सुनहली है। इसमें पाँच सौ कमरे हैं। केवल भीतरवाले हिस्से को छोड़कर महल सबके लिए खुला हुआ है।

इस महल में कुछ दर्शनीय स्तूप हैं, जिनमें से दो सोने के बने हुए हैं और बहुत ऊँचे हैं। ये दोनों स्तूप एक लामा की समाधि पर बने हुए हैं। सभी दलाई लामाओं के स्मृति-स्वरूप महल में स्तूप हैं। सिर्फ छठे दलाई लामा को यह सम्मान नहीं प्राप्त हुआ। इनका नाम ही दलाई लामा की तालिका में से निकाल दिया गया। इन्होंने एक मामूली लड़की से शादी कर ली थी। बेचारे लामा को अकेले भीख माँगते हुए तीर्थयात्रा को जाना पड़ा। वे राजगृह भी आये थे।

* बुद्धचरित के ग्यारहवें सर्ग से।

पाँचवें दलाई लामा बहुत मशहूर लामा थे और उन्हीं की समाधि पर सोने का एक स्तूप है। उनके समय में शाहजहाँ का लड़का, बंगाल के सूबेदार शाहशुजा ने ल्हासा के दरबार में एक दूत भेजा था, जिसकी कहानी यों है।—

तिब्बत में **'यार-लूंग-शेल-डा** नामक एक पहाड़ है। इस नाम का अर्थ है, 'शीशे का पहाड़।' लेकिन यह केवल नाम ही नाम है। यह पहाड़ भी और चट्टानों हीं जैसा है। इस मामले में भी 'दूर का ढोल सुहावन' वाली कहावत चरितार्थ हुई। शाहशुजा ने भी इस पहाड़ का नाम सुना और एक शीशे के चमकते हुए पहाड़ की कल्पना की। उसने दलाई लामा के पास बहुत भेंट के साथ एक दूत भेजा और प्रार्थना की कि उस मशहूर पहाड़ का एक टुकड़ा उसको दिया जाय। दूत का बड़ा स्वागत किया गया। दलाई लामा ने शाहशुजा को भगवान् बुद्ध के शाही (शाक्य) वंश का ही एक राजा समझा। **शाहजहाँ** का तिब्बती उच्चारण **'शाक्य-हा'** हुआ और जिसका शब्दार्थ होता है 'शाक्य राजा'। **शाहशुजा** के पास इस धोखे में बहुत कीमती भेंट भेजी गई। और पहाड़ का टुकड़ा न भेजने के लिए बहुत माफी माँगी गई ; क्योंकि ऐसा कोई पहाड़ तिब्बत में था ही नहीं। दलाई लामा ने स्वलिखित पत्र भी बंगाल के सूबेदार के पास भेजा।

पो-ता-ला में बहुत सी मूर्तियाँ हैं, जिनमें से कुछ बुद्ध की भी हैं। लेकिन सबसे प्रधान मूर्ति **अवलोकितेश्वर** बोधिसत्त्व की है और जिनकी पूजा बुद्ध से भी ज्यादा होती है। इस के उपासकों का यह विश्वास है कि यह एक जीवित मूर्ति है, किन्तु मैं जितनी बार गया मुझे उसमें प्राण का कोई चिह्न न मिला। मुझसे कहा गया कि मुझमें कुछ कमी है। शायद हो भी, कौन जानता है।

दलाई लामा का दर्जा बहुत ऊपर है। उनका एक प्रधान कार्य है भिक्षुओं को प्रव्रज्या (=संन्यास) देना। **पो-ता-ला** में सर्वदा लगभग दो सौ भिक्षु सूत्रपाठ करते रहते हैं। लेकिन उसमें कुल रहनेवालों की संख्या एक हजार से भी ऊपर होगी। इनको भोजन भी राजमहल से ही मिलता है।

भोजन के प्रबन्ध का महकमा भी काफी बड़ा है। उसमें लोगों के ओहदे के मुताबिक खाना मिलता है। लेकिन यह एक अजीब बात है कि दलाई लामा खुद अपने निजी नौकरों के साथ बैठकर खाते हैं।

महल में दो तरह के अफसर हैं। **चे-तु** या बड़े और **शो ल-तु** या साधारण। चार मन्त्री हैं जिनमें एक लामा और तीन गृहस्थ।

दलाई लामा के तीन महल हैं, लेकिन केवल एक ही महल **नौर-पू-लिं-का** में बगीचा है। वे प्रायः हमेशा धार्मिक पोशाक पहनते हैं। यद्यपि वे खुद **लुग गपा** सम्प्रदाय के कट्टर अनुयायियों में से हैं, फिर भी और सम्प्रदायों की मदद के लिए भी सदा तैयार रहते हैं।

ता-शी लामा का दर्जा दलाई लामा के बाद है। उनके भी बहुत से मठ और तीन महल हैं, जिनमें से दो के साथ बगीचे हैं। प्रधान मठ **ता-शी ल्हुम्पो**, ल्हासा से घोड़े पर जाने से पाँच दिन के रास्ते पर है। मठ एक पहाड़ी के पास है। इस मठ के बीच में **ग्याल-सान्-तुम्पो** नाम का एक महल है। यह तीन मंजिल ऊँचा और बहुत बड़ा

है। इसकी तीन ही छतें हैं; लेकिन **दलाई लामा** की छत की तरह सोने के पत्तरों से जड़ी हुई हैं। **ता-शी लुम्पो** का मठ प्रसिद्ध **शिगात्सी** जिले में है, जहाँ बहुत से पहुँचे हुए लामा रहते हैं।

आइए, हम लोग ल्हासा वापस चलें। शहर का प्रसिद्ध स्थान **पार-खोर** है। यह एक पार्क है, जिसके चारों तरफ धनी लोगों के घर हैं। बड़ी-बड़ी और सजी-सजाई हुई दुकानें भी यहीं हैं। इन दुकानों के मालिक भिन्न-भिन्न जातियों के हैं; जैसे तिब्बती, चीनी, नेपाली, कश्मीरी इत्यादि। **पार-खोर** के मध्य में **या-खाँ** का मन्दिर है जिसके कगूरे सुनहले हैं। इसमें बुद्ध की एक मूर्ति है। यहाँ की दो और सड़कों के नाम उन्द्रा-**शिन्-खोर** और **फु-भूग्** है। यहाँ भी दुकानें और रहने के घर हैं। **लू-फुग्** मामूली लोगों का महल्ला है।

महल के नजदीक लड़कों का स्कूल है। बहुत कम लड़कियाँ लड़कों के स्कूल में जाती हैं। ल्हासा में उनके लिए एक अलग स्कूल भी है, फिर भी अधिकतर लड़कियाँ अपने घरों पर ही पढ़ती हैं। बहुत से लड़के श्रामणेर बन जाते हैं और लड़कियाँ, खासकर धनी घरों की, श्रामणेरी बन जाती हैं। मठों के पास बड़ी-बड़ी जमींदारियाँ हैं। ऊपर से भी लोग दान देते ही रहते हैं।

लड़कियों की शादी प्रायः १८ वर्ष की उम्र में होती है। इसके पहले वे शादी नहीं करतीं—हाँ अधिक उमर तक ठहर सकती हैं।

तिब्बत का कौटुम्बिक जीवन प्रायः भारतवर्ष की तरह ही है। पिता ही घर का मालिक होता है। बहू को ससुर के घर जाना पड़ता है और वे अपने साथ में जेवर वगैरह भी ले जाती हैं। शादी वहीं होती है। शादी की रस्में हफ्तों चलती हैं। एक माँ-बाप के सभी लड़के एक ही स्त्री से शादी करते हैं; क्योंकि तिब्बत में अब भी बहुपुरुषविवाह (जैसे द्रौपदी) की प्रथा पाई जाती है।

तिब्बत की औरतें काफी आजाद हैं। वे अपना बाजार खुद करती हैं। उनको रेशमी कपड़े बहुत पसन्द हैं। घर के बने कपड़े भी काम में लाये जाते हैं। हर घर में एक करघा रहता है। औरतें कपड़ा बुनने में और उन पर फूल-पत्ती निकालने में बड़ी होशियार हैं।

धनी घरों में नौकर रक्खे जाते हैं। उनके घर बड़े सजे सजाये रहते हैं। उनकी दीवालों पर तिब्बती और चीनी तस्वीरें रहती हैं। फर्श पर मोटा कालीन बिछा रहता है। कमरों में छोटे-छोटे लम्बे टेबुल होते हैं, जिन पर बहुत नक्काशी रहती है। तिब्बती भी चीनियों की तरह लकड़ी से खाते हैं। तिब्बती प्लेट लकड़ी का बना होता है।

दिन में तीन बार लोग भोजन करते हैं। कुटुम्ब के सब लोग साथ ही खाने बैठते हैं। लोगों का मुख्य भोजन जौ का सत्तू और गोश्त है। मक्खन मिली हुई चाय वहाँ का पेय है।

जाड़े के दिनों में कमरे के बीच में लोग आग जलाते हैं और उसी को घेरकर सब लोग बैठते हैं। हर घर में बुद्ध की एक मूर्ति होती है। और उसके सामने साफ पानी से भरे हुए सात प्याले और सात चिराग रक्खे रहते हैं। **अवलोकितेश्वर की** मूर्ति

भी हर घर में जरूरी है। लोगों का विश्वास है कि पुराने राजा और दलाई लामा **अव-लोकितेश्वर** के अवतार हैं और तिब्बत अवलोकितेश्वर के स्वर्ग का प्रतिरूप है।

ल्हासा की सड़कों पर भी भिखमंगों की कमी नहीं है। रात को उस कड़ाके की ठंढ में भी बाहर सड़कों पर ये सब पड़े रहते हैं; लेकिन फिर भी बहुत खुशदिल होते हैं। तिब्बतियों का हँसमुख होना एक खास गुण है।

ल्हासा के बाहर पूर्वी-उत्तरी कोने में कसाई और दूसरे "अन्त्यज" रहते हैं। उसका नाम है **र-गप्पा**। इन गरीबों के घर याक की हड्डियों के होते हैं, जिन पर पतली मिट्टी लगी रहती है। मिट्टी में कहीं कहीं सुराख भी हो जाता है, जिससे जाड़े का बरफ और ठंढी हवा बराबर आती-जाती रहती है। इस महल्ले में सफाई का तो नाम भी नहीं है।

लामा लोग मरने पर जलाये जाते हैं; लेकिन गृहस्थों की लाश इन "अन्त्यजों" के सुपुर्द कर दी जाती है। किन्तु इन अन्त्यजों के लड़के भी मठों में शामिल होते हैं, और इनमें कई बड़े-बड़े लामा भी हो चुके हैं। इनकी लड़कियाँ भी चाहें तो भिक्षुणी हो सकती हैं। भारत के अन्त्यज या अछूतों की तरह इनकी हालत बुरी नहीं है। समाज में इनका समान अधिकार है। भारत के अछूतों की तरह इन्हें छूने या इनके साथ खाने-पीने में कोई रुकावट नहीं है। क्योंकि वहाँ किसी जातिविशेष का समाज में कोई विशेष स्वार्थ नहीं है। अतः समाज में सबका सम्मान होता है।

——

"महाकात्यायन प्रव्रज्या-ग्रहण"

(अनु० उपासक द्रव्यरत्न)

उज्जैन नगर या राजा चण्ड-प्रद्योतं, लोके बुद्ध उत्पन्न ज्वी धुंकल, धैगु-सिया, थःह्म अमात्य सैन्य तैत सःता धालः—"लोके बुद्ध उत्पन्न ज्वी धुंकल, छिमिसं सुनां फु वना, वसपोल शास्ता यात थन ब्वना हकि।"

सैन्य तसें "देव! वसपोल बुद्ध यात बिज्याकेतः जिपीं वना फै मखु, आर्य्य पुरोहित महा कात्यायन, या जक्क सामर्थ दई। अनयात छुया बिज्याःसा ठीक ज्वी।"

राजां महा कात्यायन सःता, "महा कात्यायन! दशबल बुद्ध या थाय् वना, वसपोल यात थनब्वना हकि।"

"देव! जि वोंला, वने, जित प्रव्रजित ज्वीगु आज्ञा दुसा जक्क।"

"पण्डित! न्ह्यागु याना नं वसपोल यात ब्वना हकि।"

राजा या वचन कया, महा कात्यायनं भगवानं या थाय् वनेतः, आपाः मनु छुयायेतः, धकाः, थः नापं च्याम्ह (८) मुना, श्री भगवान बिज्याना च्वं-च्वं-थाय् वना, श्री भगवानं आज्ञा दयेका बिज्याना च्वोंगु धर्म व्याख्यान ङ्यना, धर्मया श्रद्धां पूर्ण जुया, प्रतिसंबोध या ज्ञान प्राप्त जुया, अर्हत् पद्वी लात। श्री भगवानं सःता च्याम्हसितं चूड़ा कर्म याना, श्री भगवान या ऋद्धि फलं दुगु चीवर पात्र धारण याकेबिल। उमिगु चित्त सछिदँ दुपीं महास्थविर पिनि समान जुयावन। महास्थविर कात्यायनं थः गु ज्वी माःगु कार्य्य समाप्त ज्वी धुंकुसें लि—"श्री भगवान उज्जैन नगर बिज्याकेतः बिन्ति यात।"

श्री भगवानं:—"महा कात्यायन यात ! जि वयेगु समय मदु, छिपीं वोपीं सकल हु, महाराजा या चित्त सन्तुष्ट ज्वी धा:गु नेना।

बुद्ध धयापिसं मखु-गु धया बिज्याई मखु धका:, महास्थविर कात्यायनं थ: नापं व्वना हयापीं पासा-पीं समेत नापं, उज्जैन नगरं ल्याहाँ बिज्याना च्वंगु समय, तेलप्प-नाली धैगु थासे भिक्षा फों वने धका: भिक्षा फों बिज्यात···। छम्ह ग़रीब-म्ह महाजन या म्ह्याय्, मचा भले मां अबु सिना अनहे च्वं पिसं लहिना त:म्ह, तर ग़रीब जूसां, व महाजन कन्या या सौंदर्य अत्यन्त बाँला, केश (सँ) नं तता: हाक:। छम्ह धनीम्ह महाजन या म्ह्याय् नं, व ग़रीब-म्ह महाजन कंन्या थागु सँ खना लोभ वना, छम्ह मनु छ्वया सछि धा:सा सछि, दो:छिधा:सा दोछि बिया जूसां, कया हकि" धका, सँ न्याके छ्वत। "जि ग़रीब जुया हेला याना, सँ न्याके हल" धका:, नुग: मछिंका सं बीमखु धका धयाछ्वत। लें, भिक्षु पीं खाली पात्र ज्वना ल्याहाँ वना च्वोंगु वहे ग़रीब-म्ह महाजन कन्यां खना, "हरे ! जिके न्हापा या थें धन दुगु जूसा, थ्व भिक्षु पिनि पात्र खाली याना लित छ्वयेमखु थौं छ्वयाये, आ: जिके छुं मदु, "धका: विस्मात याना, हानं "उखुनु थ्व जिगु सँ न्याक्ये छ्वया ह:म्हे सित जूसां, थ्व सं मिया, भिक्षु पिनि पात्र थना बी।" भिक्षु पिन्त पात्र खाली याना, लित छ्वये मज्यू धका:–भिक्षु पिंत निमंत्रण याक्ये छ्वया, भिक्षु पिंत बिज्याका, दुनें कोठाय् द्वाहां वना, थ: गु मँ फुक्कं खाना "थ्व सँ यंका, फलाना महाजन या म्ह्याय् यात बिया, वं बिक्त दां कया, भिक्षु पिन्त भोजन याक्येगु सामान न्याना, ज्वना वा धका:, थ: पासा या ल्हाटी सँ बिया छ्वत·········।

"सँ खाना ब्यूगु कया, नुग: मछि का मिखाँ खोबि तया, न्हापा सं न्याक्ये ह:म्हेसि गु थास वना, सं न्ह्योने तया, "जित दां ब्यु" धका: धाल।"

महाजन या ह्याँ नं धाल:–"न्हापा जिं सँ का[illegible]ये छ्वया हया बलँ बिया मह: आ: जित म्वाल। न्ह्यागु सां म्वाल, सं खाना हये धुंकल, धका: कार्षापण (८) दां बिया, थुलिं गा: सा बिया थकि, मगा: सा योथाय् यंकि" धका: जवाफ बिल।" "न्ह्याक्क ब्यूसां ज्वना वा," धया ह: गु धका: बिके दां कया, भिक्षु पिन्त भोजन याक्येगु सामान न्याना, हया, पासा यात बिल। ग़रीब-म्ह महाजन कन्यां व च्याको कार्षापण दां या सामान च्योग पात्रे थना, वहे पासा-म्हेसित ल: ल्हाक्ये बिल। स्थविर कात्यायनं व कन्याया श्रद्धा भाव खना–पात्र ल: ल्हा: वो-म्हेसित तूं व ग़रीब-म्ह महाजन कन्या स:तक्ये बिल "भिक्षु पिनि वचन अनर्थ याये मज्यु" धका छेंले जाबलं तपुया प्याहाँ वया, श्रद्धा भाव विन्तियाना च्वन। महा स्थबिर कात्यायनं आज्ञा दयेका बिज्यात "हे श्रेष्ठी पुत्रि ! छं भिंगु बुज्ी पुसा पिल, सुपात्रं सुपात्र यात ब्यूगु दान या फल थ्वहे जन्मे दै," धाय् मात्रं हे न्हापा यासि नं बाँला: गु सँ बुया वल। भिक्षुपीं च्याम्हं, व कन्यां खंक खंक हे आकाशे ब्वया बिज्याना, कांचन बने क्वाहां बिज्याना भोजन याना बिज्यात। थ्व फुक्कं छम्ह मालनी (गठुनी) नं खना राजा चण्ड प्रद्योत या थाय् वना, धा: वन। "महाराज ! आर्य्य पुरोहित प्रव्रजित जुया उद्याने बिज्याना च्वन।"

गठुनी नं धा: वोगु खँ न्यना, राजा हर्षित जुया प्रसन्न-गु चित्त याना, उद्याने बिज्याना च्वना च्वंपिं। भिक्षु पिनि भोजन याये धुंक्येवँ, राजा महा कात्यायन या ह्नोने वना, महा कात्यायन धाक्ये बिंतियात "श्री भगवान् गन बिज्याना च्वन।"

"देव ! वसपोल भगवान बि मज्यासें जिमित हे छ्वया हल ।"

राजां "महाकात्यायन याके ! थऊं छलपोल पिनि भोजन गन कया हया बिज्यानागु ।"

"देव ! थऊं गरीब्रम्ह छम्ह श्रद्धालु कन्यां भिक्षा बिया हःगु" धकाः–"महाकात्यायनं व कन्यां याःगु दुष्कर कर्म्म या सकल हाल कना बिज्यात ।

श्रद्धालु कन्या खना राजा खुशी जुया व कन्या यात सतक्ये छ्वया रानी पद्वी बिया तल । छुं काल व्यतीत जुसें लिं, व रानी या गर्भ पुत्र जन्म जुया पुत्र या नां गोपाल कुमार धका तया तल । पुत्रया नामं याना, रानी या नं "गोपाल–माता" धका नां जुया वन । लिपा, व रानीं, कांचन वन या उद्याने महास्थविर भिक्षु पिंत बिज्याक्ये गु छगु बिहार दय्क्येतः, राजा याक्ये बिन्ति याना, अन उद्याने बिहार दय्का–स्थविर भिक्षु पिंत बिज्याका, उज्जैन नगर यात अनुरक्त याना लिपा स्थविर भिक्षुपिं श्री भगवान या थाय वना, श्री भगवान या थाय्सं च्वना सेवा याना च्वन……… ।

नेपाली पाठकपिन्त माःगु सूचना ।

धर्म दूतया नेपाली पाठकपिसं स्मरण यानातये माःगु खँ :—(१) 'धर्म-दूत' या चन्दा अथवा दान कं. छ्रका मनिआर्डर याना छ्वया हये माः । गुलि गुलिंसिनं साधारण चिट्ठी अथवा रजिस्ट्रीनहे नोट तया छ्वया हई, किन्तु थ्व तरीका बाँलागु मखु । थुकथं दाँ छ्वयाहैगु वखते डाकखानाएसं दाँचोरी जुया मदेफु, मखुसा हानं डाकखानां धर्म-दूत यात छटका व च्याग: घेवा जुर्माना यायेफु । थुकथं जुल धायेवं धर्म-दूतयात आपालं नुकशान ज्वीं । आवंली ग्राहकपिसं दाँ छ्वया हयेभले इन्सियोर अथवा मनिआर्डरं दाँ छ्वया हया दिसं । धर्म-दूतया प्रबन्धया विषये फुक्क प्रकारया पत्र व्यवहार मनेजरया नामं यायेमाः । (२) चिट्ठी च्वयेभले थःगु ग्राहक नम्बर च्वयाहयेमाः । प्रत्येक मास, प्रत्येक ग्राहक या नम्बर 'धर्म-दूत' या द्योनेपाखे च्वोंगु भोंते च्वया तःगु जुया च्वनी । (३) धर्म-दूत इले बेले मथ्योंसा चिट्ठी च्वया हलकि 'धर्म-दूत' हानं छ्वया हयेगु ज्याज्वी ।

रजिस्ट्री की संख्या ए० ७९०

बुद्धवचनामृत **दीघनिकाय** अमूल्य पुस्तक

त्रिपिटक का अत्यन्त प्रामाणिक और भाव-पूर्ण यह ग्रंथ, जिसमें भगवान् बुद्ध के लोक-परलोक, गार्हस्थ्य-संन्यास और आचार-दर्शन-विषयक ३४ उपदेश संगृहीत हैं, त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० द्वारा हिन्दी में अनुवादित हो अभी प्रकाशित हुआ है। इस ग्रंथरत्न से आपको भगवान् बुद्ध के विचार और व्यक्तित्व का ही ज्ञान न होगा, बल्कि इससे आप ईसा-पूर्व पाँचवीं-छठी शताब्दी के भारत की भौगोलिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक अवस्थाओं का भी परिचय पावेंगे। नकशे और विस्तृत शब्द-सूची के साथ ग्रंथ सुन्दर कागज पर सुपररायल आठपेजी के ३५६+१८ पृष्ठों में छपा है। इतना होते हुए भी डाक-व्यय सहित मूल्य केवल ५)

हिन्दी में बौद्ध-साहित्य की कुछ चुनी हुई पुस्तकें

मज्झिम निकाय	६)	पालि महाव्याकरण	५)
विनयपिटक	६)	बुद्धचर्या	५)
जातक प्रथम भाग	५)	तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
धम्मपद	≡)	बुद्ध और उनके अनुचर	१)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)	भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
बुद्ध-वचन	।=)	बुद्ध	―)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	―)	बोधि-द्रुम	।)
उदान	१)	महापरिनिब्बान सूत्त	१।)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)	महासति पट्ठान सूत्त	।)
शील वो मैत्री भावना	=)॥	वादन्याय (संस्कृत)	३)
पूजाविधि	=)	अभिधर्मकोष (संस्कृत)	५)
		वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)

मिलिन्द प्रश्न

बौद्धधर्म के अध्ययन करनेवालों के मन में जिस प्रकार की शंकाएँ उठती हैं, कुछ वैसी ही शंकाएँ आज से कोई दो हजार वर्ष पहले ग्रीस (यवन) देश के एक राजा मिनाण्डर (मिलिन्द) के मन में उठी थीं। इस ग्रंथ में उन्हीं तर्कों को प्रश्नोत्तर के रूप में रखा गया है। पृष्ठ-संख्या ६००, छपाई बँधाई सुन्दर। फिर भी दाम सिर्फ ३॥)।

पता :—बर्मी विहार; सारनाथ (बनारस)

सब प्रकार के बौद्ध साहित्य के लिए लिखिए :—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ (बनारस)।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धर्म-दूत

ये च बुद्धा अतीता च ये च बुद्धा अनागता।
पच्चुपन्ना च ये बुद्धा अहं वन्दामि सब्बदा॥

वर्ष ६
अंक १०-११
सं० ६८-६९

पौष-माघ
बु० सं० २४८५
वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
विदेशों में १॥)
एक प्रति का ‒)

विषय-सूची

अपनी बात

वर्तमान युद्ध के कारण छपाई आदि के साधन बहुत महँगे हो गये हैं। इस महँगी के जमाने में अनेक पत्र-पत्रिकाएँ बन्द हो गई हैं, और जो चालू हैं उनकी कीमत बढ़ गई हैं। बाजार में तिगुने दाम पर भी कागज नहीं मिल रहा है। ब्लाक बनाने का खर्च इतना अधिक बढ़ गया है कि नया ब्लाक बनाना असम्भव हो रहा है। कोई ऐसी पत्र-पत्रिका नहीं जिसपर इस कठिन वक्त का असर न पड़ा हो। किन्तु 'धर्म-दूत' की छपाई, पृष्ठ-संख्या और बढ़िया कागज लगाने में अभी तक कोई कमी नहीं की गई। .... इतनी कठिनाइयों के होते हुए भी वैशाख में धर्म-दूत का एक सुन्दर विशेषाङ्क निकलने जा रहा है।.......... एक बार अपने पाठकों का ध्यान हम अपनी कठिनाइयों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं और आशा करते हैं कि हमारे धर्मप्रेमी बन्धु अपनी शक्ति भर धर्मदूत की सहायता करेंगे।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सब्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्म-चरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, जनवरी-फरवरी बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४२ | अंक १०-११

निन्दा के लिए क्या करें ?

एक बार भगवान् बुद्ध अपने पाँच सौ शिष्यों के साथ राजगृह से नालन्दा की ओर जा रहे थे। इनके पीछे-पीछे सुप्रिय नाम का एक परिव्राजक भी अपने एक शिष्य के साथ जा रहा था। सुप्रिय भगवान् बुद्ध, धर्म और भिक्षु-संघ की निन्दा कर रहा था। भिक्षुओं ने जब यह बात सुनी तो आपस में इसी की चर्चा करने लगे। धीरे-धीरे यह बात भगवान् के कानों तक पहुँची। उन्होंने भिक्षुओं को सम्बोधन करके कहा, "भिक्षुओ! यदि कोई मेरी निन्दा करे, या धर्म की निन्दा करे, या संघ की निन्दा करे, तो तुम लोगों को न (उससे) वैर, न असन्तोष और न चित्त में कोप करना चाहिए।

"भिक्षुओ! यदि कोई मेरी, धर्म की या संघ की निन्दा करे, और तुम उससे कुपित या खिन्न हो जाओगे, तो इसमें तुम्हारी ही हानि है।

"भिक्षुओ! यदि कोई मेरी, धर्म की या संघ की निन्दा करे, तो क्या तुम लोग झट कुपित और खिन्न हो जाओगे, और इसकी जाँच भी न करोगे कि उन लोगों के कहने में क्या सच बात है और क्या झूठ?

"भिक्षुओ! यदि कोई निन्दा करे, तो तुम लोगों को सच और झूठ बात का पूरा पता लगाना चाहिए—क्या यह ठीक नहीं है, यह असत्य नहीं है, यह बात हम लोगों में नहीं है?

"भिक्षुओ ! और यदि कोई मेरी, धर्म की या संघ की प्रशंसा करे, तो तुम लोगों को न आनन्दित, न प्रसन्न और न हर्षोत्फुल्ल हो जाना चाहिए। यदि तुम लोग (प्रशंसा से) आनन्दित, प्रसन्न और हर्षोत्फुल्ल हो जाओगे, तो उसमें तुम्हारी ही हानि है।"

——

बोधिसत्त्व की स्मृति में

(श्रीयुत सोहनलाल द्विवेदी)

कुशीनगर के भग्न भवन में, कब तक सोओगे, बोलो ?
युग-युग बीते तुम्हें जगाते, अब तो मुद्रित दृग खोलो !
करुणा के सन्देश सुनानेवाले कैसी निष्करुणा ?
उजड़े मठ, विहार, आश्रम सब,- सूखी काशी की वरुणा !

पत्थर के कारा में बंदी, तुम नीरव निस्तब्ध पड़े,
फिर, गैरिक अंचल लहराते, हो जाओ युगदेव खड़े !
वह स्वर्णांचल लहर रहा है, गए कहीं तुम अभी नहीं,
वाणी-वीणा में सुन पड़ते, छिपे हुए तुम यहीं कहीं !

सारनाथ के जीर्ण-शीर्ण खंडहर हैं तुम्हें निहार रहे
जगते काशी के प्रबुद्ध, कितने यश तुम्हें पुकार रहे !
खड़ी सुजाता है बटतल पर, आकुल हृदय अधीर लिये,
पूर्णा खड़ी लिये झारी में, औ दृग में भी नीर लिये

शुद्धोदन भूपाल विकल सुनने को गौतम की वाणी,
यशोधरा—पदधूलि भाल धरने को भूलुंठित रानी;
मायादेवी खड़ी मूर्ति-सी, बिछी हुई पथपर पलकें,
आ, राहुल को गोद उठाओ, धूलि धूसरित हैं अलकें !

उधर अंबपाली है आकुल, उमड़े आँखों में सावन,
भिक्षुसंघ है खड़ा समुत्सुक, सुनने को प्रवचन पावन !
खड़े लिच्छिवी देख रहे हैं, क्या गणिका के गृह में आप?
भिक्षापात्र पूर्ण कर लोगे ? वह इतनी कुलीन निष्पाप ?

नैरंजना नदी की लहरें, गातीं कब से आकुल गान ?
आओ, गौतम हे, प्रबुद्ध हे, आमंत्रित करता आह्वान,
कृषा गौतमी देखो आई, द्वार, मृतक सुत गोद लिये,
आत्मबोध दो, बोधिसत्त्व ! वह लौटे धाम प्रमोद लिये !

कन्थक खड़ा उदास पंथ में, आकुल आँखें, प्राण दुखी,
ऋषिपत्तन, मृगदाव तुम्हारे बिना सभी हैं म्लानमुखी;
आज लुंबिनी की दूर्वा भी, लगा रही मन में लेखा,—
शाल वृक्ष देखते तुम्हारे अरुण चरण तल की रेखा;

खड़े पुण्य उरवेल घेरकर, कितने ही मागध औ शाक्य,
'कपिल वस्तु में करो चारिका,' सुनो रोहिणी के ये वाक्य।
हे पत्थर की मूर्ति! रहो मत, पत्थर ही मेरे स्वामी,
युग की इस कातर पुकार पर, उठो आर्त्त हे युगगामी!

——

भगवान् बुद्ध

(श्रीयुत मोहनचन्द्र सेन; महाबोधि विद्यालय, सारनाथ)

भगवान् बुद्ध का जन्म आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पहले हुआ था, वे क्षत्री कुल में पैदा हुए थे, बुद्धत्व-प्राप्ति के पहले उनका नाम सिद्धार्थ था।

जब सिद्धार्थ कुछ बड़े हुए, तो संसार के दुःख, व्याधि, और पीड़ा को देखकर उनका मन उदास रहने लगा। कुमार सिद्धार्थ के पिता राजा शुद्धोदन को उनकी उदासीनता से बड़ी चिन्ता हुई। राजा सोचने लगे कि कहीं ऐसा न हो कि मेरा एकलौता पुत्र राज-पाट छोड़कर संन्यासी हो जाय। वे कुमार को ज्यादा से ज़्यादा ऐश-आराम में रखने लगे। उनके लिए हर मौसम के लायक महल बनवा दिये।

जब कुमार १९ साल के हुए तो उनका विवाह एक बहुत ही ख़ूबसूरत कुमारी यशोधरा के साथ कर दिया गया।

एक दिन कुमार सिद्धाथ पिता की आज्ञा लेकर शहर की सैर करने निकले। रास्ते में उन्होंने एक कमज़ोर और दुखी बूढ़े को देखा। कुमार ने सारथी से पूछा "सारथी इसके बाल भी, शरीर भी चाल भी, और सुन्दरता भी हम लोगों की तरह नहीं है।"

"कुमार इसे बूढ़ा कहा जाता है, इसी आदमी की तरह सभी लोग बूढ़े होंगे और समय पाकर इस दुनिया से चलते बनेंगे" कुमार का मन इससे बहुत दुःखी हुआ।

इसी तरह एक बार कुमार ने एक रोगी और मृतक को देखा। इन दृश्यों ने कुमार के मन पर बहुत असर डाला। उन्हें इस दुनिया के दुःख-दर्द को देख कर मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। इन्हीं दिनों कुमार ने एक संन्यासी को देखा। उन्होंने पूछा, "आप कौन हैं? आपका सिर भी मुँडा है। आपके कपड़े भी हमसे भिन्न हैं। आप इस प्रकार क्यों घूमते हैं?"

संन्यासी ने जवाब दिया, "कुमार मैं, संन्यासी हूँ। मैं धर्माचरण के लिए, निर्वाण के लिए और अपने अच्छे कामों द्वार संसार की भलाई करने के लिए संन्यासी हुआ हूँ।"

कुमार सिद्धार्थ के मन पर इसका बहुत असर पड़ा और वे दुनिया के दुःख-दर्द पर बार बार विचार करने लगे।

कुछ दिनों के बाद कुमारी यशोधरा के गर्भ से एक पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम रखा गया राहुल और जो बाद में भिक्षु होकर तथागत के धर्मप्रचार में बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

एक दिन रात के समय कुमार सिद्धार्थ ने इस संसार की अनित्यता के बारे में सोचते सोचते घर त्यागने का निश्चय किया। अपने सारथी छन्दक को बुलाकर, कन्थक नाम का घोड़ा मँगा, आधी रात के समय संसार के कल्याण के लिए घर से निकल पड़े। अभी पूर्व की ओर लाली फूट रही थी कि कुमार तीस योजन की दूरी पार कर अनोमा नदी के किनारे आ पहुँचे। कुमार ने पूछा, "छन्दक, इस नदी का नाम क्या है?"

"देव इसका नाम अनोमा है।"

"तब मेरी प्रव्रज्या भी अनोमा ही होगी।"

कुमार सिद्धार्थ के वचन सुनकर वह रो पड़ा और कहा—

"देव मैं कहाँ जाऊँगा? मैं भी आपके साथ ही प्रव्रजित होऊँगा।"

"सारथी, तुम्हें संन्यास नहीं मिलेगा। ले मेरे आभूषण, यही तुम्हें, और तुम्हारे वंश के लिए काफी होगा।"

"देव मैं इसे नहीं चाहता।"

इसके बाद कुमार ने सारथी को कपिलवस्तु लौटाकर अपने कीमती वस्त्रों को छोड़ फटा पुराना कपड़ा धारण कर लिया और तलवार निकाल कर अपने बड़े बड़े केश काट लिये।

कुमार घूमते-फिरते राजगृह पहुँचे। भिक्षा माँग, नगर से निकल, एक पेड़ के नीचे आसन लगा भोजन करने बैठे। इस तरह का भोजन खाने की कभी आदत नहीं थी इसलिए पहले ही कौर में उनका जी मचलने लगा। उन्होंने अपने को समझाया "सिद्धार्थ, तू ने धनी कुल में पैदा हो सदा अच्छा भोजन किया है, और आज अब तू घर-बार छोड़ गुदड़ीधारी हो भिक्षान्न खाकर ही जीवन निर्वाह करने के लिए चला है तो यह सब क्या कर रहा है।"

राजा बिम्बिसार ने कुमार सिद्धार्थ से घर लौटने का बहुत आग्रह किया। जब कुमार नहीं माना तो यह वचन लेकर कि बुद्ध होने के बाद राजगृह आऊँगा, राजा चला गया।

राजगृह से भ्रमण करते हुए आलारकालाम् और उद्दकराम पुत्र के पास शिक्षा लेने के लिए पहुँचे; किन्तु इन दोनों की शिक्षा से इन्हें संतोष नहीं हुआ और ये उन्हें छोड़कर गया की ओर चल पड़े। वहाँ इन्होंने छः वर्ष तक कठिन तपस्या की। इनका निश्चय था कि "चाहे मेरा चमड़ा, नसें, हड्डियाँ ही क्यों न बाकी रह जाय, चाहे शरीर, मांस, रक्त, क्यों न सूख जाय, सच्चे ज्ञान को पाए बिना इस आसन को नहीं छोड़ूँगा"। किन्तु शरीर को सुखाकर सच्चे ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि इस तरह दिन-दिन दुबले होते शरीर से असल रास्ता पाना कठिन है। इसलिए मुझे भोजन करना चाहिये।

वैशाख पूर्णिमा का दिन था और आज ही कुमार की तपस्या पूरी होने को थी। उसी दिन सुजाता नाम की एक युवती ने खीर परोसकर उन्हें अर्पण की और वन्दना कर यह कहती हुई चली गई—"जैसे मेरा मनोरथ पूरा हुआ है, वैसे ही तेरा भी हो।"

खीर खाकर, कुमार पास के पीपल वृक्ष के नीचे जा, ध्यान लगाकर बैठ गये। अनेक परीक्षाओं के बाद, वासनाओं पर पूर्ण विजय प्राप्त कर वैशाखी पूर्णिमा की पुण्य तिथि को सिद्धार्थ गौतम ने उस अमरबोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया।

इसके बाद भगवान् बुद्ध क्रमशः भ्रमण करते हुए काशी पहुँचे। वहाँ भिक्षा माँग भोजन किया और वरुणा नदी पार कर सारनाथ आये। वहाँ उन्होंने पाँच भिक्षुओं को अपने धर्म में दीक्षित किया। यहीं भगवान् ने अपना सर्वप्रथम उपदेश दिया, जो धर्मचक्रप्रवर्त्तन के नाम से प्रसिद्ध है उन्होंने कहा था:—"किसी वस्तु के अन्त तक नहीं जाना चाहिए सांसारिक काम-वासनाओं में लिप्त रहना एक अन्त है, और दूसरा है पाप से मुक्ति पाने के लिए शरीर को बहुत तपाना।"

भगवान् बुद्ध ने इस लोक और परलोक को सुखकर बनाने के लिए आठ अंगों वाला श्रेष्ठ मार्ग बतलाया जो इस प्रकार हैं:—सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन्, सम्यक् कर्म, सम्यक् जीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, और सम्यक् समाधि।

इसके बाद भगवान् बुद्ध सारनाथ से चल कर राजगृह पहुँचे। वहाँ उन्होंने राजा बिम्बसार को उपदेश दिया।

फिर राजगृह से चलकर कपिलवस्तु आये। कपिलवस्तु में राजमहल में नहीं ठहर कर शहर के बाहर एक बगीचे में ठहरे। सबेरे जब भगवान् बुद्ध शहर में भिक्षा के लिए निकले तो यह दृश्य देखकर राजा शुद्धोदन का हृदय दुःख से भर गया। वह भगवान् बुद्ध के पास आया और कहा—इस प्रकार भिक्षा माँग कर खाना हमारे कुल का धर्म नहीं है। भगवान् ने उत्तर दिया—"बुद्ध-कुल का यही धर्म है।"

जहाँ भगवान् ठहरे हुए थे, वहाँ राहुल जो उनका सुपुत्र था, उत्तराधिकार माँगने गया। भगवान् के पास सांसारिक वस्तुओं में से राहुल को देने के लिए था ही क्या, इसलिए उन्होंने राहुल को भी संन्यासी बना दिया।

वे सारे उत्तरी भारत में ४५ वर्ष तक धर्मोपदेश देते हुए एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहे। अन्त में ८० वर्ष की अवस्था में कुशीनगर (गोरखपुर) में दो शाल-वृक्षों के बीच में शरीर त्याग किया।

——

मुमुक्षु

(अनु० श्रीयुत सूर्यनारायण चौधरी)

एक बार शान्ति के इच्छुक कुमार सिद्धार्थ ने वन-भूमि देखने के लिए अनुचरों के साथ प्रस्थान किया। अपने अनुचरों को दूर ही रोक कर वह एकान्त स्थान की

ओर गया। उसने एक जम्बू-वृक्ष को देखा, जिसके पत्ते चारों ओर हिल रहे थे। उस वृक्ष के नीचे वैडूर्य-मणि के समान निर्मल शाद्वल (=हरे तृणों से ढके स्थान) पर वह बैठ गया। वहाँ ध्यानावस्थित हो कर उसने प्रीति-सुख-समन्वित समाधि पाई। जगत् की गति को अच्छी तरह देखा और उसका मन निर्मल हो गया। उस समय—

पुरुषैरपरैरदृश्यमानः पुरुषश्चोपससर्प भिक्षुवेशः ॥१६॥

अन्य पुरुषों से नहीं देखा जाता हुआ भिक्षु-वेष पुरुष समीप आया।

नरदेवसुतस्तमभ्यपृच्छद्वद कोऽसीति शशंस सोऽथ तस्मै।
नरपुंगव जन्ममृत्युभीतः श्रमणः प्रव्रजितोऽस्मि मोक्षहेतोः ॥१७॥

राजा के पुत्र (सिद्धार्थ) ने उसे पूछा—"कहो, कौन हो?" तब उसने कहा—"हे नर-श्रेष्ठ, मैं श्रमण (=संन्यासी) हूँ, जन्म और मरण के डर से मोक्ष के हेतु संन्यासी हुआ हूँ।"

जगति क्षयधर्मके मुमुक्षुर्मृगयेऽहं शिवमक्षयं पदं तत्।
स्वजनेऽन्यजने च तुल्यबुद्धिर्विषयेभ्यो विनिवृत्तरागद्वेषः ॥१८॥

"क्षयशील जगत् में मोक्ष का इच्छुक मैं उस अक्षय और शिव पद की खोज करता हूँ। स्वजन और अन्य जनों में मेरी बुद्धि समान है, विषयों के प्रति न मेरे मन में न अनुराग है। और न द्वेष विमुख हो।

निवसन् क्वचिदेव वृक्षमूले विजने वायतने गिरौ वने वा।
विचराम्यपरिग्रहो निराशः परमार्थाय यथोपपन्नभिक्षुः ॥ १९ ॥

"जहाँ कहीं—वृक्ष के मूल में या विजन मन्दिर में, पर्वत पर या वन में—रहता हूँ। बन्धन-हीन और तृष्णा-रहित होकर परमार्थ (=मोक्ष) के लिए विचरण करता हूँ; जो कुछ भी भिक्षा मिलती है (उसे ही ग्रहण करता हूँ)।"

(बुद्धचरित के हिन्दी अनुवाद से।)

——

कौमार-भृत्य जीवक

श्रीयुत नागार्जुन

भगवान् बुद्ध के जमाने की बात है—

उन दिनों **वैशाली – लिच्छवियों** के गणतंत्र की राजधानी उन्नति की चोटी पर पहुँच रही थी। उस महानगरी में **अम्बपाली** नाम की एक वेश्या थी जो नृत्य, गीत आदि विविध कलाओं से नागरिकों के आकर्षण का केन्द्र बनी हुई थी। अन्य सभी वेश्याएँ उसे अपनी आचार्या मानती थीं।

मगध की तात्कालिक राजधानी **राजगृह** का नगरसेठ किसी काम से वैशाली गया, उसे वहाँ की अन्य विशेषताओं के साथ ही अम्बपाली की ख्याति ने भी मुग्ध कर दिया। वह जब लौटकर राजगृह आया तो राजा **बिम्बिसार** से बोला—

"देव ! क्या ही अच्छा हो अगर हमारे यहाँ भी अम्बपाली जैसी कोई वेश्या हो।"

"तो सेठ वैसी कुमारी ढूँढ़ो"—राजा ने आज्ञा दे दी। उस समय राजगृह में **सालवती** नाम की एक कुमारी बड़ी खूबसूरत थी, नगर-सेठ ने उसे वेश्या घोषित किया। वह थोड़े ही दिनों में नृत्य, गीत, वाद्य आदि कलाओं में पारंगत हो गई—राजगृह के नागरिक उसे अपने शहर का गौरव समझने लगे। नागरिकों के सम्पर्क में उसके कुछ ही दिन बीते थे कि उसे गर्भ रह गया—वह चिन्तित हुई कि नागरिक अगर यह घटना जान पायेंगे तो मेरी सारी इज्जत धूल में मिल जायगी। बीमारी का बहाना करके उसने बाहर आना-जाना एक दम बंद कर दिया और किसी को भीतर न आने देने के लिए दरबान को भी समझा बुझा दिया। गर्भ परिपक्व होने पर उसे एक पुत्र पैदा हुआ। सालवती ने उस बच्चे को कचरे की टोकरी में रखकर कूड़े के ऊपर छोड़ आने के लिए दासी को कहा।

राजकुमार अभय सवेरे ही उठकर राजा की हाजिरी को जाया करते थे। उस दिन उन्होंने कौओं से घिरे हुए एक नवजात शिशुको देखा और लोगों से पूछा कि क्या है ?

"बच्चा है हजूर !"

"जीता है ?"

"जी हजूर, जीता है ?"

"तो इसे ले जाकर हमारे अन्तःपुर में दे आओ ! दासियाँ इसे पोसेंगी।"

'जीता है' इसलिए उस शिशु का नाम जीवक पड़ा। कुमार ने उसका भरण-पोषण किया, इसी से वह **कौमार भृत्य जीवक** कहलाया। आगे जाकर वह बड़ा प्रतिभावान् निकला। बड़ा होने पर वह **तक्षशिला** गया और वहाँ एक प्रमुख आयुर्वेदाचार्य से पढ़ने लगा। वह बड़ी तेजी से पढ़ता था, सहपाठी उससे परेशान रहते थे। पढ़ते-पढ़ते जब उसे सात वर्ष हो गये तब वह एक दिन बेचैन हो उठा—"अरे, इस शास्त्र का तो अन्त ही नहीं दीखता है ! क्या सारी ज़िन्दगी इसी में बीत जायगी ?"

उसने आचार्य के पास जाकर पूछा—"आर्य, मेरी पढ़ाई कब खतम होगी ? जी-जान लगाकर पढ़ते हुए मुझे सात साल हो गये !"

आचार्य ने कहा—"तो जाओ वत्स जीवक ! जाओ एक खन्ती लेकर तक्षशिला के योजन-योजन भर चारों ओर घूम आओ; उस में जो अ-भैषज्य (दवा के अयोग्य) पौदे तुम्हें दिखाई पड़ें उनकी जड़ लेते आना"।

जीवक खन्ती लेकर तक्षशिला के चारों ओर चक्कर लगा आया लेकिन उसे ऐसा कोई भी उद्भिज नहीं दिखाई दिया जो कि दवा के अयोग्य हो। वह आचार्य्य के पास उपस्थित हुआ।

"आर्य, मैंने दवा के अयोग्य कोई भी उद्भिज नहीं देखा—सभी भैषज्य ही दीख पड़े।"

"सीख चुके वत्स जीवक, तुम्हारे गुज़ारे के लिए यही पढ़ाई काफ़ी है"—बस, उस आचार्य ने राजगृह वापिस जाने की अनुज्ञा दे दी। जीवक **मगध** की ओर चल पड़ा, जाते जाते **साकेत** (अयोध्या) में उस का पाथेय घट गया। उसने सोचा कि जंगली रास्ते हैं, क्यों न मैं यहीं आगे के राह खर्च का प्रबन्ध कर लूँ।

उस समय साकेत के नगर सेठ की स्त्री को सात वर्ष का पुराना शिर-दर्द का रोग था। बड़े बड़े दिगन्त-विख्यात वैद्य बुलाये गये, उनकी बिदाई में हजारों अशर्फियाँ खरची गईं लेकिन उस बेचारी का रोग जैसे का तैसा रहा!

जीवक ने जब यह बात सुनी तो वह नगर सेठ के यहाँ पहुँचा, लेकिन सेठानी को जब मालूम हुआ कि वैद्य नया है—अभी अभी पढ़कर निकला है तो उसने साफ़ साफ कह दिया, "तरुण वैद्य मेरा क्या करेगा, जब बड़े बड़े दिग्गज वैद्य जैसे आये वैसे चले गये!"

"पहले कुछ नहीं लूंगा, जब तुम रोग मुक्त हो जाओगी तब देखा जायगा।"—जीवक ने सेठानी को कहला भेजा। उसे भला अब क्या आपत्ति होती? जीवक ने सेठानी का रोग पहचाना। नाना प्रकार की जड़ीबूटियों से घी को भावित करके सेठानी को चारपाई पर उतान लिटवा कर नथनों में दे दिया। नाक में दिया हुआ, वह घी मुंह से निकल पड़ा। सेठानी ने पीकदान में थूक कर दासी से कहा—"इस घी को बर्तन में रख ले"

"कितनी कंजूस है यह सेठानी! फेंकने लायक घी को बर्तन में रखवाती है! कितनी ही अमूल्य जड़ी-बूटी मैंने इस में डाली हैं, उसके लिये भला यह क्या देगी" जीवक ऐसा सोच रहा था कि सेठानी बोल उठी —

"आचार्य्य! क्यों उदास होते हो? हम घरवालियाँ (—आगारिका) हैं, इस संयम को हमी जानती हैं; यह कंजूसी नहीं है। यही घी नौकरों के लिएपैरों में मलने और दीपक में डालने को अच्छा है। तुम उदास मत होओ आचार्य, तुम्हारे आदर-सत्कार में कमी नहीं होगी।"

जीवक ने सेठानी के उस पुराने सिर दर्द को एक ही बार में दूर कर दिया। नगर-सेठ के परिवार ने उसे सोलह हजार अशर्फियां, एक दास और दासी तथा एक घोड़े का रथ देकर बिदा किया। राजगृह पहुँचकर जीवक ने अपने प्रतिपालक कुमार अभय से निवेदन किया—

"देव! यह सोलह हजार स्वर्ण-मुद्रायें, दास-दासी और अश्व-रथ मेरी सफलता का प्रथम निदर्शन है। पोसाई (पोसाविक) में इसे स्वीकार करें, देव!"

"नहीं तात, यह तेरा ही रहे। हमारे ही अन्त:पुर में अपना मकान बनवा लो।"

"जैसी आज्ञा, देव!"

× × × ×

एक बार महाराज **बिम्बिसार** को भगंदर की बीमारी हुई, धोतियां खून से तर हो जाती थीं। रानियों ने मजाक करना शुरू किया—"इस समय महाराज ऋतुमती हैं, पुष्प उत्पन्न हुआ है, देवको शीघ्र ही महाराज गर्भ धारण करेंगे!"

महाराज ने वैद्य की चर्चा की तो कुमार अभय ने जीवक का नाम लिया। जीवक नखों में दवा भर कर राजा के पास गया। एक ही बार के लप से बिम्बिसार को भगन्दर से छुटकारा मिल गया। राजा ने पाँच सौ स्त्रियों को नाना अलंकारों से आभूषित कर फिर उन अलंकारों को छुड़वा कर उनकी ढेरी लगवा दी और जीवक से कहा—

"यह पाँच सौ स्त्रियों का आभूषण तुम्हारा है।"

"यही बहुत है कि देव मेरी सेवा को स्मरण रक्खें।"

"तो तात जीवक! अब से तुम मेरी अन्तःपुर की चिकित्सा किया करना और भगवान् बुद्ध की एवं भिक्षु संघ की भी।"

मगध-राज बिम्बिसार की आज्ञा से जब जीवक बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ का चिकित्सक नियत हुआ, तब बीमार आदमी सु-चिकित्सा के लोभ से सिर मुँडाकर तथा कपड़े रँगाकर भिक्षु बनने लगे। जीवक ने बुद्ध के पास इसकी शिकायत की तो भगवान् बुद्ध ने नियम बना दिया कि कोई भी रोगी व्यक्ति प्रव्रज्या का अधिकारी नहीं हो सकता।

× × × ×

राजगृह के किसी सेठ को सिर-दर्द की पुरानी बीमारी थी, बड़े बड़े अनुभवी वैद्यों ने अपनी अपनी असमर्थता बताकर उसे जीवन से निराश कर दिया। कुछ वैद्यों ने कहा कि आज से पांचवें दिन सेठ मर जायगा और कुछ ने कहा कि नहीं आज से सातवें दिन मरेगा। राजगृह के नगर-सेठ ने सोचा कि क्यों न तरुण वैद्य जीवक को भी पूछ लिया जाय, इसको मरना तो है ही। लेकिन जीवक को लाने में राजा की अनुमति जरूरी थी, इस लिये नगर-सेठ राजा के पास गया। जीवक राजा की आज्ञा से बीमार सेठ को देखने गया। रोग पहचान कर उसने कहा—

"क्यों सेठ, एक करवट से सात महीने लेटे रह सकते हो?"

"हाँ आचार्य्य, रह सकता हूँ।"

"दूसरी करवट से?"

"रह सकता हूँ।"

"और उतान?"

"उतान भी रह सकता हूँ।"

तब जीवक ने सेठ को चारपाई पर लिटा कर उसके हाथ-पैर बाँध दिये, सिर की चमड़ी काटकर खोपड़ी के भीतर से दो कीड़े निकाले और लोगों से कहा—

"देखिये यह दो कीड़े हैं—एक बड़ा है, दूसरा छोटा; जिन वैद्यों ने कहा था कि सेठ पाँचवें दिन मरेगा, उन्हों ने इस बड़े कीड़े को मालूम किया था। पाँच दिन में यह सेठ के मगज की गुद्दी चाट लेता। और, जिन्हों ने कहा था कि सातवें दिन मरेगा, उनको इस छोटे कीड़े का पता लगा था। सात दिन में यह मगज की गुद्दी चाट लेता, और गुद्दी चाट लिये जाने पर सेठ जरूर मर जाता। इसलिये उन वैद्यों ने वैसी भविष्य-वाणी की थी"

बाद में जीवक ने सेठ की खोपड़ी जोड़ कर चमड़ा सी दिया और ऊपर से मरहम-पट्टी कर दी। सात दिन बीत जाने पर सेठने उससे कहा—

"आचार्य्य, एक करवट से सात मास तक लेटे रहना असंभव है।"

"तो दूसरी करवट से लेटो।" सात दिन और बीत जाने पर फिर उसने मजबूरी दिखलाई तो जीवक ने सात मास उतान लेटने को कहा। सात दिन बीत जाने पर वह फिर गिड़गिड़ाने लगा।

"तो सेठ, क्यों तुमने पहले कहा कि सकता हूँ ?"

"आचार्य, मैं मर भले ही जाऊँ लेकिन मुझसे अब लेटा न जायगा।"

"उठो सेठ, अच्छे हो गये। मैं जानता था कि तीन हफ्ते में सेठ चंगा हो जायगा। अगर मैंने वैसा कबूल न करवाया होता तो तुम इतने दिनों तक भी नहीं लेटे रह सकते थे!"

× × × ×

बनारस के नगर-सेठ के पुत्र की आँतों में खेलते समय गाँठ पड़ गई, उसे खिचड़ी भी हजम नहीं होती थी। बदन की हड्डियाँ और नीली नसें दिखलाई पड़ने लगीं, तो सेठ ने आदमी भेजकर राजा से जीवक की मँगनी की। जीवक ने बनारस जाकर रोगी को देखा। पेटका चमड़ा चीर कर आँत की गाँठ को सुलझा दिया और चमड़ा सीकर उस पर पट्टी बाँध दी।

× × × ×

कौशल देश के **राजा प्रद्योत** को पाण्डुरोग हो गया था। दूत भेजकर जीवक राजगृह से प्रद्योत की चिकित्सा के लिये **श्रावस्ती** (कोशल की राजधानी) मँगवाया गया। उसने राजा के रोग की परीक्षा की और कहा—

"देव, घी पकाता हूँ, उसे पीना अच्छा होगा"

"बस, जीवक ! घी को छोड़कर और चाहे तुम जो पिलाओ। घी से मुझे घृणा है।"

जीवक ने सोचा कि यह राजा महाक्रोधी है और यह रोग ऐसा है कि जिसे दूर करने में घी का प्रयोग अनिवार्य है। क्यों न मैं घी को ही जड़ी-बूटियों से रसान्तर एवं रूपान्तर करके इसे दूँ, लेकिन घी पीने के बाद राजा को वमन जरूर होगा। गुस्से से कहीं मुझे मरवा न डाले अपने बचाव का उपाय अभी से कर रखूँ तो अच्छा होगा।

जीवक ने राजा प्रद्योत से कहा—"देव, हम लोग वैद्य हैं। विशेष मुहूर्तों में जड़ियाँ उखाड़ते हैं। साधारण समयों की औषधियां महत्त्वपूर्ण नहीं होतीं; अच्छा हो, यदि देव वाहन-शालाओं और नगर-द्वारों के अध्यक्षों को आदेश दे दें कि जीवक जिस वाहन से चाहे, जिस द्वार से चाहे, तभी बाहर जावे और जब चाहे, तभी नगर के भीतर आवे।"

राजा ने उसकी यह बात मान ली।

जीवक ने घी पकाकर राजा को दिया --"देव, दवा पीयें।"

कोशल नरेश की वाहन-शाला में **भद्रवतिका** नाम की एक हथिनी थी, जो दिन भर में पचास योजन चलने की शक्ति रखती थी।

राजा को घी पिलाकर वह तुरन्त हाथिसार में गया और भद्रवतिका पर सवार होकर श्रावस्ती से निकल पड़ा।

इधर राजा को थोड़ी देर बाद उलटी हुई तो उसने सेवकों से कहा—"दुष्ट वैद्य ने मुझे धोखा दिया। पकड़ लाओ उसे।"

"देव, वह भद्रवतिका पर सवार होकर बाहर गया हुआ है।"

राजा का **काक** नाम का एक दास था जो दिन भर में ६ योजन चल सकता था। जीवक को पकड़ने के लिये उसे रवाना करते हुए राजा ने कहा—यह वैद्य लोग बड़े मायावी होते हैं, देखना, उसके हाथ का कुछ लेना मत"

काक ने जाते जाते **कौशाम्बी** में जीवक को पा लिया। वहाँ वह विश्रामशालामें कलेवा कर रहा था।

"आचार्य, तुम्हें राजा बुलाता है।"—काक ने कहा। उस समय जीवक नख से दवा लगाकर आँवला खा रहा था, उसने काक से भी आग्रह किया।

"जरा तू भी खा।"

काक ने सोचा कि जो चीज़ वैद्य खुद भी खा रहा है, उसे खाने में हर्ज नहीं तब उसने आधा आँवला खाकर पानी पिया। उलटी होने पर काकने जीवक से कहा—"आचार्य, मेरी जान लेते हो!"

"कोई डर नहीं काक, तू भी नीरोग हो जायगा और राजा भी। अब तू लौट जा, राजा क्रोधी है, मुझे मरवा डालेगा। ले अपनी हथिनी, मैं नहीं लौटूँगा।"—कहते हुए जीवक ने राजगृह का रास्ता लिया।

कुछ दिन बाद, नीरोग हो जाने पर राजा प्रद्योत ने दूत भेजा कि आवें आचार्य, इनाम दूँगा। लेकिन जीवक नहीं गया। आखिर उस राजा ने एक बहुमूल्य दुशाला जीवक को पारितोषिक में भेजा।

× × × ×

एक दिन **आयुष्मान आनन्द** ने जीवक से कहा—"भगवान् (बुद्ध) का शरीर दोष-ग्रस्त होगया है, आप जुलाब लेना चाहते हैं।"

"तो भदन्त आनन्द, भगवान् के शरीर को कुछ दिन स्निग्ध करें।"

कुछ दिनों के बाद जीवक बुद्ध के पास गया। उसने नाना प्रकार के विरेचन द्रव्यों से तीन चम्मच (उत्पलहस्त) जुलाब तैयार किया।

"भगवन्, एक-एक चम्मच दश-दश बार दस्त लायेगा; इस प्रकार भगवान् को तीस दस्त होंगे। औषध से भरा हुआ पहली उत्पलहस्त बुद्ध के हाथ में देते हुए जीवक ने कहा—"भगवान्, इसे सूँघें। इसी तरह दूसरे और तीसरे उत्पलहस्त को भी सूँघें।"

जीवक अभिवादन कर चला गया। बाद में बुद्ध को उनतीस दस्त हुए, गरम पानी से नहाने के बाद एक दस्त और हुआ। इस तरह पूरे तीन विरेचन हुए! कुछ दिनों तक **तथागत** ने भोजन में कुछ सूप लिया। बाद में स्वस्थ होते देर न लगी।

× × × ×

एक बार दुष्ट **देवदत्त** ने बुद्ध पर पत्थर फेंका। उनके पैर में चोट लगी और थोड़ा ख़ून भी निकल आया। वेदना बढ़ती गई, भदन्त आनन्द ने संवाद भेजा तो जीवक आया। उसने भगवान् के आहत स्थान को शस्त्र से चीरकर कु-रक्त निकाल दिया और विकृत मांस काट फेंका। मरहम लगाकर पट्टी लगा दी। तथागत का घाव अच्छा हो गया *

---

* पालि-वङ्मय के महावग्ग (विनयपिटक), समन्तपासादिका (वि. पि. की अट्ठकथा) और जातक (५३३) में कौमार भृत्य जीवक का जो उल्लेख है यह उसी का संक्षिप्त भावानुवाद है।

—लेखक

पवित्रता की सुगन्धि

(श्री भिक्खु मेत्तेय्य)

वे ब्रह्मचर्य, शील, ऋजुता, मृदुता, तपस्या, आज्ञाकारिता, अहिंसा और क्षमा की प्रशंसा करते थे।

उनमें जो सबसे श्रेष्ठ, ब्रह्मा के सदृश दृढ़ पराक्रमी था, उसने स्वप्न में भी मैथुनधर्म का सेवन नहीं किया।

उसका अनुकरण करके बुद्धिमान् लोगों ने ब्रह्मचर्य, शील और शान्ति की प्रशंसा की।

प्रिय पाठकगण, सारे संसार को शान्ति का स्थान और पवित्रता की सुगन्धि से भरा एक उद्यान बनाने की शक्ति आप लोगों में हो।

मेगस्थनीज कहता है "भारत की किसी भी कन्या की अपवित्रता की बात ज्ञात नहीं। भारतीय लोग शील, उत्साह तथा बुद्धि से एशिया खण्ड के दूसरे सब लोगों से बढ़े चढ़े थे"। ये सब सम्पत्ति फिर आपको प्राप्त हो तथा सारे संसार को भी।

अगर सारा संसार आज से तीसरे शिक्षापद की रक्षा करने की प्रतिज्ञा कर ले तो इस पृथ्वी पर न तो अशान्ति रहेगी, न दुःख रहेगा, न बुरी बीमारियाँ रहेंगी और न रहेंगे झगड़े।

मनुष्यों के मन से बुरे व्यवहार का विचार सदा के लिए दूर हो। हर एक मनुष्य सद्भावना से युक्त हो।

धर्मपाल ग्राम—धर्म से रक्षित ग्राम—में पति और पत्नी एक दूसरे के प्रति पवित्र रहते थे। उसी से उस गाँव के बच्चे बाल्यकाल में नहीं मरते थे। पवित्र माता-पिता सारे संसार की सहायता करने वाले बुद्धिमान् तथा स्वस्थ्य बच्चे पैदा करते हैं।

पद्मावती लंका की रूपवती कन्या ने चित्तौर में आग में कूद कर अपनी तथा सूर्यवंश की पवित्रता की रक्षा की।

भगवान् बुद्ध ने कहा है कि पति और पत्नी को देवता तथा देवी की तरह रहना चाहिए। सभी देशों में और सभी कालों में जहाँ जहाँ भगवान् के सच्चे अनुचर होंगे वहाँ का घर इसी पृथ्वी पर स्वर्ग है।

सुन्दर कन्याओं में नकुल-माता तथा नकुल-पिता की कथा सबसे बढ़कर है।

प्रेम से बँधे हुए वे कुमुद की तरह पवित्र रहते थे। उनका नकुल नामक एक पुत्र था तथा और भी कई लड़के। जब एक दिन प्रातःकाल भगवान बुद्ध उनके घर पहुँचे, उन्होंने बहुत श्रद्धा के साथ उनका स्वागत किया। उनके लिए राजकीय आसन बिछाये और उनके चरणों के समीप बैठे।

नकुल के पिता ने कहा—"हे भगवान्! जब से मैं नकुल की माता को ब्याह करके घर लाया हूँ तब से मैंने मन से भी उसका अतिक्रमण नहीं किया।

"भगवान्! हम लोग इस जीवन में एक दूसरे को देखना चाहते हैं। हम लोग दूसरे जन्म में भी एक दूसरे के साथ प्रेम से रहना चाहते हैं।"

नकुल की माता ने भी कहा—"भगवान् ! जब से मैं नकुल के पिता द्वारा बाल्यावस्था में ही दुलहिन के रूप में लाई गई, जब वह भी स्वयं ही बालक था तब से मैंने उसका अतिक्रमण नहीं किया।

"भगवान् हम लोग इस जन्म में एक दूसरे को प्रेम से देखना चाहते हैं और हम लोग दूसरे जन्म में भी एक साथ रहना चाहते हैं।"

भगवान् ने उन लोगों को कहा:—"जो लोग श्रद्धा, शील, त्याग तथा प्रज्ञा से युक्त है वे हमेशा एक दूसरे को इस जन्म में तथा दूसरे जन्म में भी प्रेम से देखते हैं।"

उस अवसर पर भगवान् ने और भी कहा:—यदि दोनों श्रद्धा तथा त्याग से युक्त हो कर, संयम-पूर्वक मधुरभाषी हो और धर्म के अनुसार रहते हैं तो उन्हें बहुत लाभ होते हैं।

सद्गुण उनमें एकता पैदा करते हैं। उनके शत्रु पराजित होते हैं।

इस प्रकार इस संसार में धार्मिक जीवन बिताकर शील-गुण में समान वे इच्छित सुख को पाकर स्वर्ग में भी आनन्द मनाते हैं।"

उन लोगों की वृद्ध अवस्था की कथा और भी करुणा-पूर्ण है।

नकुल-पिता वृद्ध तथा रोगी हो गया। वह मृत्यु के निकट था। उसे अपने बच्चों की चिन्ता थी। पवित्र नकुल माता चारपाई के पास खड़ी उसे आश्वासन देती थी। "मेरे स्वामी ! आप व्यग्र न हों। दुःखी न हों। किसी चीज के लिए तृष्णा न करें। तृष्णा से युक्त मृत्यु की भगवान् ने प्रशंसा नहीं की। इसलिये आप शान्त हों।

"आप यह न सोचिए कि आपकी मृत्यु के बाद मैं लड़कों को नहीं पाल सकूँगी।

"ऐसा न सोचें प्रिय स्वामी; मैं सूत कातने और ऊन धुनने में चतुर हूँ।

"शान्त रहिए स्वामी। आपकी मृत्यु के बाद भी मैं अपने और बच्चों के लिए कमा सकूँगी।

"आपकी मृत्यु के बाद मैं दूसरे आदमी की खोज नहीं करूँगी। जैसे हम लोग अब हैं, वैसे ही सदा रहेंगे।

"स्वामी, आप जानते हैं जब से हम लोगों को भगवान् के दर्शन हुए तब से हम लोग ने उसी घर में कैसे पवित्र जीवन बिताया।

"शान्त रहें। आप की मृत्यु के बाद भी मैं भगवान् का दर्शन किया करूँगी। संघ की सेवा में तत्पर रहूँगी।

"जब तक भगवान् के शासन में श्वेत वस्त्रधारी शीलवान् उपासिकाएँ रहेंगी तबतक मैं भी उनमें एक रहूँगी।

"प्रिय स्वामी ! शान्त रहिये। अगर कोई मेरी बात पर सन्देह करता है तो वह सर्वज्ञ भगवान् बुद्ध से जाकर पूछ सकता है। वे इस समय भग्ग (देश) में रहते हैं।"

जब नकुल-पिता ने इन शब्दों को सुना, तब वह अच्छा हो गया। चारपाई से उठकर लाठी के सहारे वह भगवान् बुद्ध के पास पहुँचा। भगवान् को प्रणाम करके एक ओर बैठ गया और जो आश्चर्य जनक बातें नकुल-माता ने कही थीं वे सब भगवान् को सुनाईं।

भगवान् ने नकुल-पिता को कहा :—"गृहपति, यह तुम्हारा सौभाग्य है कि नकुल माता सदृश दयामयी, प्रेम करनेवाली, गुरु तथा मंत्री की तरह तुम्हारी भलाई चाहनेवाली स्त्री तुम्हारी पत्नी है।"

जब नकुल पिता ने यह सुना, वह बहुत प्रसन्न हुआ और भगवान् को प्रणाम करके स्वस्थ हो घर लौटा।

हर एक हृदय में ऐसा स्वास्थ्य तथा पवित्रता स्थान पाये।
हर एक घर में इसी प्रकार का सुख विराजमान हो।
सारे संसार में ऐसी ही पवित्रता तथा शान्ति व्याप्त हो।

(अनु० भिक्षु धर्मज्योति)

प्रज्ञापारमिता स्तोत्र

हे जननि ! ज्ञानधनी !!
दर्शन दे दुःख खनी
राग मदै भोग तनी
सर्वज्ञ भी एक खनी

प्रज्ञापारमिता जगत जननिया संसारचक्रे थुकी
अज्ञानें मन दग्ध जूगु मथुया, अघोर दुःखे तुकी
हाः हाः कार मने जुयाव जगतें चाचा हुला ज्वी थुकी
सर्वाकार गु ज्ञान भाव मनती, तृष्णादि स्वप्ने फुकी

हे जननी !......

संसारे गुलि दुःख भीत जुई सो, छुं हे मदु ज्वीगु सो।
चिरो हे जक जूगु सीकि अमथो, आदी मदु भीगुथो
तः धंपिं मुनि जूगु भाव थुगु हे, मेगुं मखू ज्वीगु सो
केवल् भी कल्पना मनफुकी श्री बुद्ध भी ज्वीगु सो

हे जननी......

संसारे गुलि प्राणी धाको सकलें, दुःखें अमी यैमखू
तृष्णाआदि मती तया भव थुकी, दुःखं फुके फै मखू

लोकें सो सकस्यां सुखें मनवनी, तृष्णा मतीतै मखू
तृष्णादिं मन मोह धाको मफुकं, सर्वज्ञ ज्वी दै मखू
हे जननी......

आदी प्राणी भवे जुई थुगुकथं, न्हापां वया ज्वी मने
संसारे मन भाव ज्वी सक भनं, अन्धा अज्ञानी बने
न्ह्याकों भोगी जुया मनें सुखतयी तृष्णादि दुःखी खने
तृष्णादि दुःख फुकी गुह्यसिनं परमार्थी सुखें ह्यँ अनं
हे जननी......

संसारे सुख धागु दक्व सकतां, दुःखं तनी हे मखू
वैराग्ये मन तै भवें सुख मयै भिक्षु बिना यैमखू
भिक्षु ज्वी मनयेक थाई बलनं, ज्ञानें मध्यं कै मखू
श्रावक ज्ञान कनी कने मछिनीसो, प्रत्येक मस्वै मखू
हे जननी......

प्रत्येकें वनीसा मन्थे सुख मदी, ह्मनं बनी सो अनं
प्रज्ञापारमिता अभेद्य गुगुली शुंने मती तै थनं
क्लेशं मुक्तजुया महा सुख जुई, जन्मादि दुःखं अनं
सर्वाकार खनी जिथेह्मसीकै, निर्वाण देसौ थनं
हे जननी......

निर्वाणे दुःखनी भवे गुलिदुपिं, संसार निर्वाण हे
निर्वाणे मदुपिं भव्ये गुलिदुपिं, दै हे मखू भावहे
निर्वाणे भवे सो भव्ये गूगु व सो, भावं मदू योगहे
निर्वाणे खनी सो मने जुई जिसो संसार एकहे
हे जननी......

प्रेषक :—श्रीयुत ज्ञानरत्न बज्राचार्य्य

———

धम्मपद छापेयागु ज्याय् ग्वाह्मालि याना दिस !

नेपाया बौद्ध उपासकत थ्वखंनेना अत्यन्त प्रसन्न मजुसे च्योने फैमखुकि महाबोधि सभा नेवा भाषं बौद्ध साहित्य या प्रकाशन प्रारम्भ यानाब्दें धुंकल, हानं 'शील व मैत्री भावना' नामगु सँफू प्रकाशित ज्वी धुंकल, हानं आबं धम्मपद या नेवा अनुवाद छापे जूवना चोना 'धम्मपद' या छपाईले २५० ति दाँ मालीगु जुया चोंगुदु। अतः सभां नेपाया श्रद्धालु उपासक पिनि पाखें पुण्य कार्यें ग्वाह्मालि फोना चोंगुदु गथें जुया नेपाया धर्म प्रेमी उपासक पिसंफर्ति फक्वो याकनं आर्थिक अर्थात घेयायागु सहायता वियाबोंगु अवस्थाय आशा यायेफुकि आवैगु मासं लिसेंहे 'धम्मपद या छपाई शुरु यानं छोई। सहायता छोया हयेगु पता—मंत्री, महाबोधि सभा, सारनाथ (बनारस)

सम्पादक की डाक

उदयशंकर भारत सांस्कृतिक केन्द्र, अलमोड़ा से संयुक्तप्रान्त के गवरनर सर मारिस गार्नियर हैलेट का एक वक्तव्य प्रकाशनार्थ आया है, जिसका सारांश इस प्रकार है:—अलमोड़ा के उदयशंकर संस्कृति केन्द्र का मैंने निरीक्षण किया। इस अवसर पर मैंने रामायण का एक छाया-नाटक भी देखा। यह एक ऐसा स्थान है जहाँ भारत के युवक-युवती अपनी सांस्कृतिक शिक्षा पा सकते हैं। यह एक आदर्श संस्था है। किन्तु दुख है कि अभी तक, आर्थिक कठिनाई के कारण इस भारतीय संस्कृति के महान् केन्द्र का अपना भवन नहीं है। यद्यपि यह युद्ध का समय है और हम सब उसमें फँसे हैं; फिर भी मैं भारतीय और दूसरे देशवासियों से इस संस्था की सहायता की आशा करता हूँ।

काशी नागरी प्रचारिणी सभा के प्राधन मन्त्री से सूचना मिली है—

सभा की अर्द्धशताब्दी उत्सव संवत् २००० वि० में मनाई जायगी। अवसर पर सभा की जो विस्तृत रिपोर्ट प्रकाशित की जायगी, उसकी वर्तमान रूप-रेखा तैयार कर ली गई है। सभा के सभासदों और अन्य हिंदी-प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे इस पर अपनी सम्मति सभा के पास भेजें, जिससे रिपोर्ट को सर्वांगपूर्ण बनाने में सभा को सहायता मिले और अर्द्धशताब्दी उत्सव भी सफलतापूर्वक संपन्न हो।

समर्थ हिंदी-प्रेमियों से प्रार्थना है कि वे अर्द्धशताब्दी संबंधी प्रकाशन के लिए सभा को कम से कम ५०० रु० की सहायता दें और धन के साथ अपना चित्र भी भेजने की कृपा करें। कम से कम ५०० रु० देनेवाले सज्जनों के चित्र अर्द्धशताब्दी रिपोर्ट में प्रकाशित किये जायँगे।

विशाल भारतीय राष्ट्र के लिए यह अपूर्व महोत्सव होगा। इसलिए आशा है इसमें देश के समस्त विद्वानों और श्रीमानों का सहयोग प्राप्त होगा।

हमारी नजरों में

महापरिनिर्वाण सूत्र; सम्पादक—भिक्षु कित्तिमा; प्राप्तिस्थान—बर्मी विहार, सारनाथ (बनारस)। मूल्य १।) । यह ग्रंथ प्रसिद्ध 'महापरिनिर्वाण सूत्र' का मूल और हिन्दी अनुवाद है। इसके अनुवादक हैं त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन। इस सूत्र द्वारा भगवान् बुद्धके समय के सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक स्थिति पर काफी प्रकाश पड़ता है। भगवान् बुद्धके अन्तिम उपदेश इसी सूत्र में आये हैं। इस दृष्टि भी इस सूत्रका बहुत अधिक महत्त्व है। पुस्तक में चार ब्लाक, मूलपालि और महापरिनिर्वाणभूमि कुशीनगर में प्राप्त प्राचीन लेखोंका संग्रह देकर ग्रंथ की उपयोगिता और बढ़ा दी गई है। इस सुन्दर

ग्रंथ के प्रकाशन के लिए सम्पादक जी को अनेक धन्यवाद है। आशा है हिन्दी भाषा भाषी जनता इस पुस्तक को अपनाकर प्रकाशक को उत्साहित करेगी।

प्राचीन भारत—प्रकाशक, दि इन्डियन रिसर्च इन्स्टिट्यूट, १७०, मानिकतला स्ट्रीट, कलकत्ता। वा० मू० ४)। यह मासिक पत्रिका गत माघ मास से निकल रही है। इसमें अनेक खोजपूर्ण लेख छपते हैं। इसका छठा अंक हमारे सामने है। 'राजपूत शब्द और उसका अर्थ', 'पाटलिपुत्र' आदि लेख काफी खोजपूर्ण हैं। हिन्दी में पुरातत्त्व एवं संस्कृति-विषयक कोई अलग पत्रिका नहीं थी। इस कमी को 'प्राचीन भारत' पूरी कर रहा है। हाँ, अंगरेजी पुस्तकों के जो उद्धरण दिये गये हैं वे प्रायः बिना अनुवाद के ही हैं। यथार्थ में इन उद्धरणों में मूल अँगरेजी देने की जरूरत ही नहीं है, केवल हिन्दी अनुवाद काफी है। और फिर जब हिन्दी से अँगरेजी उद्धरणों की ही मात्रा अधिक हो तो फिर क्या कहना। पत्रिका पुरातत्त्व के विद्यार्थियों के लिए उपयोगी है।

ग्राम-सुधार:—प्रकाशक, ग्राम-सुधार-कार्यालय; इन्दौर। वा० मू० १) ग्राम-सुधार के विषय में समय समय पर हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में अनेक लेख छपते रहते हैं। किन्तु इन लेखों में से अधिकांश में केवल योजना पेश की जाती है, उसका कोई व्यावहारिक रूप स्पष्ट नहीं होता। ग्रामों में प्रायः खेतिहरों की ही आबादी अधिक है। इन किसानों को हम शहर में बैठे हुओं की लम्बी लम्बी योजनाएँ कुछ फायदा नहीं पहुँचा सकतीं। उन्हें उन बातों को बतलाने की जरूरत है जो तजुर्बे से साबित हो चुकी हों। 'ग्राम-सुधार' में किसानों एवं किसान कार्यकर्त्ताओं के उपयोग की काफी बातें रहती हैं। इसका वार्षिक मूल्य भी बहुत कम रखा गया है। आशा है, लोग इससे फायदा उठावेंगे।

सूचना

हिन्दी-प्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि त्रिपिटकाचार्य राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० अनेक पाली के ग्रन्थों का हिन्दी-अनुवाद पाठकों के सम्मुख उपस्थित कर दिया है। अब अगले वर्षों में "संयुत्तनिकाय" और "खुद्दकनिकाय (के मुख्य भागों)" का हिन्दी अनुवाद छप जायगा। महाबोधि सभा इन ग्रन्थों के सुन्दर प्रकाशन के लिए कटिबद्ध है, किन्तु यहाँ हिन्दी-प्रेमियों का भी कुछ कर्तव्य है जिसका पालन वे इस प्रकार कर सकते हैं—(१) पुस्तकों को खरीद और प्रचार कर, (२) आठ आना भेज महाबोधि-ग्रन्थमाला के स्थायी ग्राहक बन, (३) सौ या अधिक रुपया दे ग्रन्थमाला के संरक्षक बन।

स्थायी ग्राहकों को ग्रन्थमाला की पुस्तकें (धम्मपद, मज्झिम निकाय, विनय-पिटक और दीघनिकाय) तीन-चौथाई दाम में मिलेंगी। संरक्षकों का नाम पुस्तक के साथ छाप दिया जायगा और उन्हें सभी पुस्तकें मुफ्त मिलेंगी।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य

दीघ निकाय	५)	पालि महाव्याकरण	५)
मज्झिम निकाय	६)	वादन्याय (संस्कृत)	३)
विनयपिटक	६)	बुद्धचर्या	५)
जातक कथा (प्रथम भाग)	५)	अभिधर्मकोष: (संस्कृत)	५)
धम्मपद	≡)	वार्तिकालङ्कार (संस्कृत)	३)
तिब्बत में सवा बरस	३॥)	तिब्बत में बौद्ध-धर्म	१॥)
बुद्ध-वचन	।≈)	बुद्ध और उनके अनुचर	१)
भगवान् हमारे गौतम बुद्ध	–)	भगवान् बुद्ध की जीवनी	१)
उदान	१)	बुद्ध	–)
मिलिन्द-प्रश्न	३॥)	बोधि-द्रुम	।)
पूजाविधि (नेवारी)	=)	महापरिनिब्बान सूत्त	१।)

मिलने का पता—

महाबोधि पुस्तक-भण्डार, सारनाथ (बनारस)।

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन, प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स

धर्म-दूत

बौद्धधर्म के अनन्य भक्त और 'धर्म-दूत' के सहायक
श्रीयुत डा० आर० एल० सोनो

वर्ष ६
अंक १२
सं० ७०

फाल्गुन
बु० सं० २४८५
वि० सं० १९९८

वार्षिक मूल्य १)
विदेशों में १॥)
एक प्रति का =)

विषय-सूची

बौद्ध-जगत्

—महात्मा गान्धीजी २२ जनवरी को प्रात:काल मूलगन्धकुटी विहार के दर्शन के लिए सारनाथ पधारे। विहार में भगवान् बुद्ध की मूर्ति की फूल और प्रदीप से पूजा की। भिक्षुओं ने सूत्रपाठ करके आपकी मंगल-कामना की। तत्पश्चात् भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी ने आपके विहार के भित्तिचित्रों का परिचय कराया। आपने सारनाथ स्थित चीनी विहार का भी दर्शन किया। फिर खण्डहर और संग्रहालय देखकर बनारस चले गये।

—महाबोधि सभा के प्रयत्न से पिछले वर्षों की भाँति इस वर्ष भी लगभग २०० यात्रियों का एक दल बौद्ध तीर्थ-स्थानों के दर्शन के लिए सिंहल द्वीप से भारत आया।

—महाबोधि सभाके सहायक मन्त्री भिक्षु संघरत्नजी गत मास से मूलगन्धकुटी विहार (सारनाथ) के इंचार्ज और भिक्षु धम्मजोतिजी महाबोधि-विद्यालय के एक्टिंग मैनेजर नियुक्त हुए हैं।

—भिक्षु धर्म्मालोकजी महाबोधि सभा के बहुजन-विहार (बम्बई) के स्थानीय भिक्षु होकर गये हैं।

—लाहौर के श्रीयुत बद्रीनाथजी ने सभा के लोकोपकारी कार्यों के लिए १००) का दान दिया है।

—तिब्बत स्थित नेपाल के व्यापारी श्रीयुत पूर्णमान ने 'धर्म-दूत' के प्रकाशन-कोष में २५) का दान दिया है।

—मैसूर की महारानी साहिबा गतमास मूलगन्ध कुटीविहार देखने आईं।

—भदन्त आनन्द कौसल्यायनजी दिसम्बर के अन्तिम सप्ताह में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के वार्षिक अधिवेशन में सम्मलित होने अबोहर गये थे। वहाँ से लाहौर, अमृतसर, दिल्ली आदि भ्रमण करते हुए जनवरी में सारनाथ लौट आये।

श्रीयुत आर० एल० सोनी (रंगून) ने धर्मदूत-प्रकाशन-विभाग को २५) का दान दिया है। गतवर्ष भी आपने १००) का दान दिया था।

धर्म-दूत

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजनहिताय बहुजनसुखाय लोकानुकम्पाय अत्थाय हिताय सुखाय देवमनुस्सानं। देसेथ भिक्खवे धम्मं आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसानकल्याणं सात्थं सव्यञ्जनं केवलपरिपुन्नं परिसुद्धं ब्रह्मचरियं पकासेथ। महावग्ग (विनय पिटक)

"भिक्षुओ ! सर्वसाधारण के हित के लिए, लोगों को सुख पहुँचाने के लिए, उन पर दया करने के लिए तथा देवताओं और मनुष्यों का उपकार करने के लिए घूमो। भिक्षुओ ! आरम्भ, मध्य और अन्त—सभी अवस्थाओं में कल्याणकारक धर्म का, उसके शब्दों और भावों सहित उपदेश करके, सर्वांश में परिपूर्ण परिशुद्ध ब्रह्मचर्य्य का प्रकाश करो।"

सम्पादक :—सुमन वात्स्यायन

वर्ष ६ | सारनाथ, मार्च | बु० सं० २४८५ / ई० सं० १९४२ | अंक १२

बौद्धधर्म की विशेषताएँ

(श्रीयुत धननारायण कपूर, बीकानेर)

जहाँ अन्य धर्मों में शास्त्र (धार्मिक ग्रंथों) को ही कानून मान लिया गया है, वहाँ बौद्ध धर्म अपने अनुयायियों को विचार-स्वातंत्र्य तथा स्वनिर्णयका अधिकार देता है। बौद्ध धर्म का उद्देश्य विवेक और बुद्धि द्वारा ही कर्त्तव्य का निर्णय करना है, बुद्धि पर ताला लगाकर लकीरपंथी बनना नहीं।

कहा जाता है कि इस्लाम तलवार के जोर से और ईसाइयत राजनैतिक प्रभुत्व के कारण ही फैल सकी। यह चाहे सत्य हो या न हो परन्तु यह ऐतिहासिक सत्य है कि शिया को सुन्नी और प्रोटेस्टेन्ट को केथोलिक बनाने के लिए मध्यकाल में अनेक अत्याचार किये गये थे। बौद्धों ने अपने धर्म-प्रचार में हिंसा तो क्या, जोर-जबरदस्ती से भी कभी काम नहीं लिया। राजनैतिक सुविधा भी चीन, लंका, बर्मा आदि देशों में, जहाँ अब बौद्ध लोग पाये जाते हैं, उस समय उन्हें उपलब्ध नहीं थी। केवल बौद्ध धर्म ही ऐसा धर्म है जो अपने निजी गुणों से ही विश्वव्यापी बना। बौद्ध भिक्षु किसी सांसारिक लोभ से नहीं वरन् लोक-कल्याण की भावना से ही अगम्य वन और दुर्गम पर्वतों को लाँघ कर विदेश में पहुँचे थे।

बौद्ध धर्म जात-पाँत या छोटे-बड़े की भावना से परे है। भारतीय ईसाई और अंग्रेज ईसाई जैसे भेदभाव की भी इसमें गुंजायश नहीं। बौद्ध धर्म में भारतीय बौद्धों

और चीनी बौद्धों में कभी कोई भेद नहीं माना गया। जो भी छोटी-बड़ी जातियाँ (आर्य, द्रविड़, मंगोल आदि) बौद्ध धर्म में दीक्षित हुईं उनके साथ सदा सभ्य जातियों जैसा ही बर्ताव किया गया।

बौद्ध धर्म का आधार बुद्धि है, किन्हीं कपोल-कल्पित बातों को इसमें कोई स्थान नहीं है। बौद्ध धर्म प्रतीत्यसमुत्पाद (वैज्ञानिक भाषा में जिसका अर्थ विकासवाद ही होता है) में विश्वास करता है। आधुनिक विज्ञान भी विकासवाद को सृष्टि का कारण मानता है।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त भी बौद्ध धर्म में अनेक अद्वितीय गुण हैं। इन अनुपम गुणों का ही यह परिणाम है कि यूरोप और अमरीका के कतिपय विद्वानों ने निष्पक्ष होकर सब धर्मों का अध्ययन किया और उन्होंने बौद्ध धर्म को ही स्वधर्म के रूप में अपनाया। किसी बौद्ध प्रचारक ने जाकर उन्हें बौद्ध नहीं बनाया। बौद्ध धर्म में मानवधर्म अथवा विश्वधर्म के सब गुण विद्यमान हैं। भविष्य में यदि कोई विश्व धर्म होगा तो वह बौद्ध धर्म ही हो सकता है।

अन्यमतावलम्बियों तथा बौद्धों में मुख्यतया मतभेद आत्मा और परमात्मा के विषय में है। मैं यहाँ किसी विवाद में न पड़कर केवल यही निवेदन करूँगा कि बिना विचारे आक्षेप करने से पूर्व आक्षेपकर्ता अपनी दृष्टि को ही जरा तर्कपूर्ण बनावें। बौद्ध धर्म बुद्धि और तर्क से परे किसी बात पर विश्वास नहीं करता। न बौद्ध धर्म उस रूप में, जिस रूप में कि प्राय: इतर जन ख्याल करते हैं, "अनात्मवादी ही" है।

आम्रपाली के उपवन में भगवान् बुद्ध

(अनु०—श्रीयुत सूर्यनारायण चौधरी एम० ए०, पूर्णिया)

[आज से प्राय: दो सहस्र वर्ष पूर्व अश्वघोष नामक महाकवि हो गया है। वह साकेत-निवासी और सुवर्णाक्षी का पुत्र था। ब्राह्मण-कुल में उसका जन्म हुआ था। और ब्राह्मण-धर्म की ही शिक्षा-दीक्षा उसे मिली थी। पीछे बौद्ध धर्म के गुणों से आकृष्ट होकर वह बौद्ध हो गया। वह कालिदास की कोटि का महाकवि था। उसने संस्कृत में बौद्धधर्म विषयक कई काव्य और नाटक लिखे, जिनमें सौन्दरानन्द और बुद्धचरित प्रसिद्ध हैं। इन दोनों महाकाव्यों की हस्तलिखित प्रतियाँ नेपाल राज के पुस्तकालय में वर्तमान हैं। बुद्धचरित में कुल अट्ठाइस सर्ग थे। अब इसका पूर्वार्ध ही बचा हुआ है। उत्तरार्ध नष्ट होने से बहुत पूर्व ही सम्पूर्ण ग्रन्थ के तिब्बती और चीनी अनुवाद हो चुके थे, जिनके आधार पर आक्सफोर्ड के अध्यापक जौन्सटन ने बुद्धचरित के अप्राप्त मूल अंशों का अँगरेजी में अनुवाद किया है। अब इस अँगरेजी अनुवाद का एक हिन्दी रूपान्तर तैयार किया जा रहा है, जिसके बाइसवें सर्ग का कुछ अंश नीचे दिया जाता है।]

वहाँ (नादी में) एक रात रहकर श्रीघन (बुद्ध) वैशाली नगरी चले गये। आम्रपाली के प्रान्त में एक उज्ज्वल उपवन में ठहरे (१५)। "तथागत यहीं हैं" यह जानकर आम्रपाली वेश्या एक साधारण रथ पर सवार हुई और अत्यन्त प्रसन्न हो-

कर चली (१६)। देव-पूजन-समय की एक कुलीन स्त्री के समान वह स्वच्छ श्वेत वस्त्र पहने हुए थी और मालाओं या अङ्गराग से रहित थी (१७)। रूपवती वनदेवता के समान अपने सौन्दर्य और गौरव में आत्मविश्वास करती हुई वह रथ से उतरी और तेज़ी से उपवन में घुस गई (१६)।

"उसकी आँखें चञ्चल हैं और उसके कारण कुलीन स्त्रियों को शोक होता है" यह देखकर सुगत ने दुन्दुभि की सी वाणी में शिष्यों को आदेश दिया (२०) :—"यह आम्रपाली समीप आ रही है, जो दुर्बलों का मानसिक ताप है; स्मृति रूपी रसायन से अपने अपने मत को वश में रखते हुए तुम लोग ज्ञान में स्थित हो जाओ (२१)। स्मृति और ज्ञान से रहित पुरुष के लिए स्त्री के सान्निध्य (पड़ोस) की अपेक्षा साँप या खुली तलवार वाले शत्रु का सान्निध्य अच्छा है (२२)। बैठी हो या सोई, टहलती हो या खड़ी, चित्र-लिखित ही क्यों न हो, स्त्री (हर हालत में) पुरुषों के हृदय हरण करती है (२३)। स्त्रियाँ विपत्ति से भी पीड़ित हों या रोती हुई चारों ओर बाहु-लताएँ फेंक रही हों, या आकुल-केशपाश हो (बिखरे बालों से) दग्ध हो रही हों, तो भी उनकी शक्ति उत्कृष्ट होती हैं (२४)। बाहरी वस्तुओं का प्रयोग करती हुई वे अनेक आहार्य (बनावटी) गुणों से (लोगों को) ठगती हैं और अपने वास्तविक गुणों को छिपाती हुई वे भूखों को मोह में डालती हैं (२५)। स्त्री को अनित्य, दुःखमय और अनात्म समझने से पण्डितों के चित्त उसे देखकर अभि-भूत नहीं होते हैं (२६)। बहकी हुई स्मृति से स्त्री की चञ्चल आँखों को देखने की अपेक्षा लोहे की तपी काँटियों से आँखें जला डालना अच्छा है (२६)। अतः स्मृति का त्याग नहीं करते हुए, परम सावधानी से चलते हुए, और अपने हित का ख़्याल रखते हुए, तुम लोग मन से उत्साह-पूर्वक भावना करो (३६)।"

......तब आम्रपाली उन्हें देखकर हाथ जोड़े समीप आई (३७)। शान्तचित्त मुनि को एक वृक्ष के नीचे बैठे देखकर आम्रपाली ने मुनि के द्वारा उपवन का उपभोग होने से अपने को अनुगृहीत माना (३८)। फिर अपनी चञ्चल आँखों को ठीक कर उसने पूर्ण विकसित चम्पक पुष्प-सदृश मस्तक से मुनि को बड़ी श्रद्धा से प्रणाम किया (३६)। जब सर्वज्ञ (मुनि) के आदेशानुसार वह बैठ चुकी, तब मुनि ने उसके समझने योग्य शब्दों में उसे कहा (४०) :—

"तुम्हारा यह आशय पवित्र है और तुम्हारा चित्त विशुद्धि-द्वारा स्थिर है; तो भी रूपवती एवं युवती नारी में धर्म-पिपासा दुर्लभ है। इसमें आश्चर्य का क्या कारण है कि धर्म बुद्धिमान् पुरुषों को या विपत्ति-पीड़ित स्त्रियों को या संयतात्माओं को या व्याधि-ग्रस्तों को आकृष्ट करे ? किन्तु यह असाधारण है कि विषयासक्त जगत् में स्वभावतः दुर्बलबुद्धि एवं चञ्चलचित्त युवती धर्म-भाव का पोषण करे। तुम्हारा चित्त धर्माभिमुख है, यही तुम्हारा सच्चा धन है; क्योंकि जीवलोक अनित्य है, अतः धर्म को छोड़कर दूसरा सहारा नहीं। रोग स्वास्थ्य को गिराता है, उम्र जवानी को काटती है और मृत्यु जीवन अपहरण करती है; किन्तु धर्म के लिए ऐसी कोई विपत्ति नहीं।

(सुख की) खोज में मनुष्य को केवल प्रिय से वियोग और अप्रिय से संयोग होता है, इसलिए धर्म ही सर्वोत्तम मार्ग है। दूसरों पर आश्रित होना महादुःख है और अपने

पर आश्रित होना परम सुख; तो भी मानव-वंश में उत्पन्न सभी स्त्रियाँ दूसरों पर आश्रित हैं।*

इसलिए तुम उचित निष्कर्ष पर पहुँचो, क्योंकि पराश्रय और प्रसव के कारण स्त्रियों को अत्यन्त कष्ट होता है (४१-४८)।"

उसने—जो उम्र में छोटी थी, किन्तु जो आशय बुद्धि और गम्भीरता में छोटी-जैसी नहीं थी महामुनि के ये वचन प्रसन्नता-पूर्वक सुने (४९)। तथागत के धर्मोपदेश करने से उसने कामासक्त चित्त की अवस्था का परित्याग किया, स्त्रीत्व (स्त्री होने की दशा) को तुच्छ समझती हुई वह विषयों से विमुख हो गई और अपनी जीविका के उपायों से उसे घृणा हो गई (५०)।

——

वाणी का सदुपयोग

(भिक्षु धम्मानन्द)

मनुष्य का हृदय स्वभावतः पवित्र है। किन्तु परिस्थिति के परिवर्त्तन से वह स्वयं परिवर्तित हो जाता है। परिस्थिति से प्रभावित होकर वह कभी-कभी अपनी पवित्रता को कलङ्कित भी करता है। परन्तु ऐसे लोग प्रायः संसार में नहीं हैं, जो सर्वांश में अपवित्र माने जा सकें। प्रेम, कष्ट सहिष्णुता, तथा सुख एवं शुभ की इच्छा सभी में कुछ न कुछ पाई जाती है। साधारण से साधारण व्यक्ति पर भी इनका कुछ न कुछ प्रभाव होता है। यह मानव प्रकृति है।

मनुष्य में गुण और दुर्गुण दोनों हैं। तथापि गुणों की ओर उसका झुकाव प्रायः अधिक है। उदाहरणार्थ हम जितने लोगों से मित्र बनते हैं, उतना अमित्र नहीं बनते। जिसे हम अमित्र कहते हैं वह वही है जो किसी समय हमारा मित्र था, एक अपरिचित व्यक्ति कदापि अमित्र नहीं हो सकता। अधिक मित्रता या अनुचित मित्रता ही अमित्रता का कारण हो सकती है। मित्रता के स्वागत के लिए हम स्वभावतः उत्सुक रहते हैं। परन्तु अमित्रता किसी दुर्घटना के परिणामतः होती है। इससे सिद्ध होता है कि स्वागत का भाव मनुष्य के लिए विरोध की अपेक्षा अधिक निकटवर्ती है। इसी तत्व के आधार पर अभिधर्म में अकुशल-कर्मों को अहेतुक तथा कुशल कर्मों को सहेतुक बताया गया है। अर्थात् मनुष्य के गुण उसके दुर्गुणों की अपेक्षा अधिक प्रबल हैं। हम वस्तुतः सत्य के प्रेमी हैं, किसी से असत्य सुनना हम नहीं चाहते। यदि कोई व्यक्ति किसी बात के विषय में हमसे असत्य कह दे तो कदाचित् हम क्रोधित भी होते हैं। इसलिए कि हम वास्तव में सत्य के भक्त हैं, और असत्य के विरोधी। इसके विपरीत हम किसी किसी बात में अपने को असत्यवादी भी सिद्ध कर देते हैं। असत्यता का भी हम कभी कभी उपयोग करते हैं, और इसके लिए हम कुछ अंश में दोषी बनते हैं। परन्तु हम वास्तव में इससे कलङ्कित

---

* मूल श्लोक बहुत कुछ ऐसा हो सकता है:—

पराश्रयः महादुःखं, स्वाश्रयः परमं सुखं।
मनुवंशे समुत्पन्नाः सर्वाः स्त्रियः पराश्रिताः॥

नहीं होते। क्योंकि हमारे कर्म का निर्णय हमारे विचार के अनुसार, भावना के अनुसार और ध्येय के अनुसार ही होता है। सद्भावना से जो कुछ हम करते या बोलते हैं वह वास्तव में कुशल है, अकुशल नहीं। हमारी ही भावना हमारे कर्मों की निर्णयदाता है।

सत्यासत्य का भेद उपयोगिता और आवश्यकता के अनुसार होता है। संसार में आवश्यक सत्यता एवं आवश्यक असत्यता दोनों होती हैं। सत्यता की मर्यादा के साथ साथ असत्यता का भी कुछ उपयोगिता हम किसी किसी स्थलों में देखते हैं। अनिवार्यता के वशीभूत होकर हमें कभी कभी असत्य का उपयोग करना पड़ता है। और कहीं कहीं सत्यता की मर्यादा, अर्थात् उसकी अनावश्यकता को भी हम अनुभव करते हैं। यदि हम किसी वृक्ष के पत्ते गिनकर कह दें कि इस वृक्ष में इतने पत्ते हैं, तो वह अवश्य सत्य है। परन्तु वैसी सत्यता हमारे जीवन से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखती और वह एक निरर्थक सत्य है। यह सर्वमान्य बात है कि माता-पिता अपने बच्चों को किसी किसी बात में डराने के लिए और उन्हें सान्त्वना देने के लिए कभी कभी असत्य ही नहीं वरन् सर्वथा अस्वाभाविक बातें भी कह देते हैं। परन्तु यह एक मात्र पवित्र एवं शुभ कामना से है; अतः यह एक सार्थक-असत्यता है। इसमें आवश्यकता और उपयोगिता दोनों है। तात्पर्य यह कि एकमात्र सत्य बोलने के लिए प्रण करना हमारा कर्तव्य नहीं वरन् समय और अवस्था के अनुसार वाणीका सदुपयोग ही हमारा परम कर्तव्य है।

सत्यवादी को चाहिए कि उपयोगितावादी भी बनें। सत्यता का मूल्य मानने में है। यदि हम किसी बात को मानना ही नहीं चाहते अथवा उसे मानने में हमें कुछ आपत्ति हो, तो उसकी सत्यता हमारे व्यक्तिगत जीवन के लिए अनावश्यक है।

हाँ, सत्यता हमारे लिए सबसे जरूरी है; और हमारा परमार्थ भी वही है। किन्तु उसका उपयोग करने में हमें अपनी मर्यादा समझ लेनी चाहिए। भगवान् बुद्ध स्वयं किसी बात को सत्य होने के कारण नहीं कहते, इसलिए उन्हें सत्यवादी ही नहीं बल्कि थेतवादी और कालवादी इत्यादि उपनामों से पुकारते हैं। वे अवस्थानुसार, और समयानुसार अपनी वाणीका उपयोग करते हैं।

"या सा वाचा नेला कण्णसुखा, पेमनीया, हृदयङ्गमा, पोरी, बहुजन-कन्ता, बहुजनमनापा, तथा रूपिं वाचं भासिता होति सम्फप्पलापं पहाय सम्फप्पलाप पटिविरतो होति, कालवादी; भूतवादी, अत्थवादी, धम्मवादी, विनयवादी, निधानवतिं वाचं भासिता होति, कालेन सापदेसं परियन्तवतिं अत्थसंहितं"।

(मज्झिमनिकाय)

अर्थात् वह वाणी जो सार्थक है, कर्णसुख है, प्रेमनीय, हृदयङ्गम तथा पौरी अर्थात् नागरिक है, जनसाधारण के लिए हितकर है, ठीक वही वाणी तथागत की वाणी है। तथागत व्यर्थ बातों से परे हैं, अतएव वह कालवादी हैं, समय एवं परिस्थिति के अनुसार बोलते हैं; भूतवादी, अर्थात् वही बात बोलते हैं जो वास्तविक है, **अर्थवादी है, धर्मवादी है, विनयवादी** है और उसी वाणी का उपयोग करते हैं जिसमें मूल्य है; उचित समय और स्थान में वे ऐसी ही बात बोलते हैं जिससे कि कुछ परिणाम निकलता है और जो सर्वथा अर्थ से सम्पूर्ण है, यही है वाणी का सदुपयोग।

———

महापजापती गोतमी

(श्रीयुत भगवतीप्रसाद चन्दोला)

[ये पद्य 'थेरीगाथा' में भिक्षुणियों के कहे हुए माने जाते हैं। इनमें प्रसिद्ध भिक्षुणियाँ संख्या में ७३ बताई जाती हैं, जो सभी प्रायः तथागत के जीवन-काल में वर्तमान थीं। बुद्ध के सिद्धान्तों ने स्त्रियों में कैसा प्रचार पाया था और वे उन्हें हृदयंगम करने में कितनी सफल हुई थीं, यह बात 'थेरीगाथा' से स्पष्ट है। भिक्षुणियों में महारानी गोतमी का सर्वोच्च स्थान है। गोतमी बुद्ध-माता मायादेवी की भगिनी थीं। बुद्ध को जन्म देने के पश्चात् जब माया देवी की मृत्यु हो गई तब गोतमी ने ही नवजात बालक का पालन-पोषण किया। इसी कारण बुद्ध का एक नाम गौतम हुआ। गौतम के बुद्धत्व लाभ करने के अनन्तर गोतमी ने संघ में प्रवेश किया और अपने श्रेष्ठ गुणों के कारण भिक्षुणियों की अधिष्ठात्री हुई।]

नमः वीरवर बुद्ध! श्रेष्ठ तू सारी सत्ता में—जग में,
जिसने दुःख हरे मेरे, औ अन्य सभी जन के जग में।

समझ गई मैं मर्म दुःख का, इच्छा का सोता सूख गया,
पाया है निरोध को मैंने, आर्य-मार्ग* है सूझ गया।

माता, पुत्र, पिता, भ्राता का, औ' आर्य्या† का रूप धरे,
सत्यधर्म से हीन फिरी हूँ, जन्म-जन्म नव रूप धरे।

मैंने प्रभु को देखा है; बस अन्तिम जन्म यही मेरा,
छिन्न हुई संसार-ग्रन्थि, है जग में जन्म न अब मेरा।

देखो, दृढ़ता से, नित चित दे जुटे पराक्रम में ये सब—
यही श्रावक‡ साधुमार्ग पर चलते;—श्रेष्ठ बुद्ध-वन्दन अब।

सबके मंगल हित माया§ ने जन्म दिया है गौतम को,
व्याधि-मरण आदि के कारण दुख—के हर्ता गौतम को।

धर्म-दायाद

(अनु० भदन्त आनन्द कौसल्यायन)

कालाशोक के लड़के दस भाई थे, जिन्होंने बाइस वर्ष राज्य किया। उनके बाद **नवनन्द** क्रम से राजा हुए, उन्होंने भी बाइस वर्ष राज्य किया। फिर मौर्य (क्षत्रिय) वंश में प्रसिद्ध महाराज चन्द्रगुप्त हुए, जिन्हें महाक्रोधी ब्राह्मण चाणक्य ने

* आर्य-अष्टाङ्ग-मार्ग; † दादी; ‡ बुद्ध के शिष्य, भिक्षुगण; § बुद्ध-माता मायादेवी

नवें नन्द **धननन्द** को मरवा कर, सकल **जम्बूद्वीप*** का राजा बनाया। उसने चौबीस वर्ष और उसके पुत्र **बिन्दुसारने** अट्ठाईस वर्ष राज्य किया। बिन्दुसार के एक सौ एक पुत्र थे, उनमें सबसे अधिक पुण्य, तेज और बलवाले **अशोक** थे। उन्होंने अपने निन्नानवे सौतेले भाइयों को मार कर सकल **जम्बूद्वीप** का एक छत्र राज्य प्राप्त किया।

भगवान् बुद्ध के निर्वाण के पश्चात् और **अशोक** के अभिषेक के पूर्व २१८ वर्ष व्यतीत हुए जानने चाहिए।...**अशोक ने** एकछत्र राज्य प्राप्त करने के चार वर्ष बाद, **पाटलिपुत्र** (पटना) में अपना अभिषेक कराया।

...खिड़की पर बैठे हुए **अशोक** एक समय यति न्यग्रोध सामणेर को शान्त भाव से सड़कपर जाते देख बड़े प्रसन्न हुए। वह सामणेर, **बिन्दुसार** के सबसे बड़े बेटे राजकुमार सुमन का पुत्र था।...प्रेम-बद्ध राजा (अशोक) ने उसे शीघ्र ही अपने पास बुलाया।...(अशोक ने) सामणेर से भगवान् (बुद्ध) द्वारा कहा गया धर्म पूछा। सामणेर ने अप्रमाद वर्ग का उपदेश दिया, जिसे सुनकर राजा की बुद्ध धर्म में आस्था हुई।... फिर शहर को सजवाकर संघ को निमन्त्रित करके घर पर लाया। भिक्षुओं के भोजन कर चुकने पर, उनके योग्य बहुत सारे उपहार देकर, (राजा ने) उनसे पूछा, "बुद्ध (शास्ता) के दिये गये उपदेश कितने हैं?" **मोग्गलिपुत्र तिस्स** स्थाविर ने उसका उत्तर दिया।

"धर्म के चौरासी स्कन्ध (विभाग) हैं," सुनकर, राजा ने कहा, "मैं प्रत्येक के लिए विहार (मन्दिर) बनवाकर उन सब की पूजा करूँगा।" तदनन्तर राजा ने छियानवें करोड़ देकर, पृथ्वी के चौरासी हजार नगरों में वहाँ वहाँ के राजाओं को **विहार** बनवाने को कहा। और स्वयं भी **अशोकाराम** बनवाना आरम्भ किया।

...एक दिन शिकार खेलते हुए युवराज तिष्य (अशोक का बचा हुआ एक भाई) ने वन में किलोल करते हुए मृगों को देखकर सोचा कि वन में घास खाकर रहनेवाले यह मृग भी इस प्रकार मौज करते हैं; तो सुख-पूर्वक आहार-विहार करनेवाले भिक्षु क्यों न मौज करते होंगे।

घर आकर उसने अपना यह विचार महाराज (अशोक) से कहा। उन्होंने उसे (शिक्षा देने की इच्छा से) एक सप्ताह के लिए राजा बना दिया; और कहा, "एक सप्ताह तक तुम इस राज को भोगो, इसके बाद मैं तुमको मार दूँगा। एक सप्ताह के बीतने पर, जब महाराज ने पूछा, "कुमार! तुम दुबले क्यों हो गये," तो उसने कहा, "मरने के भय से।" तब राजा ने कहा, "हे तात! एक सप्ताह के बाद मरने के भय से तुमने मौज नहीं की, तो सदैव मृत्यु का ध्यान रखनेवाले, यह यति (भिक्षु) कैसे मौज कर सकते हैं।" भाई का यह वचन सुनकर उसकी (बुद्ध) धर्म में आस्था हुई।...उसने महाराज अशोक के पास जाकर प्रव्रजित होने की आज्ञा माँगी। अशोक उसे प्रव्रजित होने से न रुकते देख, बड़े जलूस के साथ विहार को ले गये। वहाँ वह महाधर्मरक्षित स्थविर के पास प्रव्रजित हुआ।

---

* उत्तरी भारत।

† 'धम्मपद' के अप्पमादवग्ग से।

राजा का **अग्निब्रह्मा** नाम का एक भांजा था, जो कि राजा की लड़की **सङ्घमित्रा** का पति था। उन दोनों के एक पुत्र का नाम सुमन था। उस (अग्निब्रह्मा) ने राजाज्ञा माँगकर युवराज के साथ ही प्रव्रज्या ग्रहण की। लोगों के महान हित के लिए उपराज की यह प्रव्रज्या महाराज **अशोक** के अभिषेक के चतुर्थ वर्ष में हुई।

जो विहार बनवाने आरम्भ किये थे, वह तीन वर्षों में सभी नगरों में बनकर तैयार हो गए। पाटलिपुत्र (पटना) में विहार बनवाने के अध्यक्ष इन्द्रगुप्त स्थविर के कार्य्य-चातुर्य्य से वह **अशोकाराम** ठीक ठीक बन कर तैयार हो गया। राजा ने भगवान् के निवास से पवित्र हुए स्थानों पर, जहाँ-तहाँ सुन्दर चैत्य बनवाए।

फिर उन्हें (विहारों, चैत्यों के) देखने से अतीव संतुष्ट हुए राजा ने संघ से पूछा, "भन्ते ! बुद्धधर्म में किसका त्याग महात्याग है ? क्या मेरे समान (त्यागी) धर्म का सगा (दायाद) कहला सकता है ?" धर्म धुरन्धर स्थविर मोग्गलिपुत्त तिष्य ने उत्तर दिया, "राजन् ! तुम्हारे जैसे महात्यागी को धर्म का सगा (दायाद) नहीं कह सकते, दाता (दायक) ही कह सकते हैं। किन्तु जो अपने लड़के अथवा लड़की को धर्म में प्रव्रजित कराता है, वह धर्म का दायाद और दायक दोनों होता है।"

तब राजाने धर्म का सगा (दायाद) बनने की इच्छा से, वहीं खड़े हुए **महेन्द्र** और सङ्घमित्रा को पूछा, "तात ! क्या प्रव्रज्या ग्रहण करोगे ? प्रव्रज्या बड़ी महान् है।" पिता के इस वचन को सुनकर उन दोनों ने कहा, "देव ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो हम आज ही प्रव्रजित हो सकते हैं। हमारे भिक्षु बनने से हमें और आप दोनों को (पुण्य) लाभ होगा।" राजा **महेन्द्रको** उपराज बनाना चाहता था, किन्तु प्रव्रज्या को उस (उपराजपद) से भी अधिक महत्त्वपूर्ण समझ, उसने इसी को पसन्द किया। बुद्धि, रूप और बल से युक्त प्यारे **महेन्द्र** और पुत्री सङ्घमित्रा को राजा ने बड़े समारोह के साथ प्रव्रजित कराया। प्रव्रज्या के समय राजपुत्र **महेन्द्र** बीस वर्ष के और राजकुमारी सङ्घमित्रा अठारह वर्ष की थीं। कुमार के उपाध्याय **मोग्गलिपुत्त तिस्स** और प्रव्रज्या देनेवाले **महादेव** स्थविर हुए। सङ्घमित्रा की उपाध्याया प्रसिद्ध धर्मपाला, और आचार्या आयुपाला हुईं। धर्म-प्रकाशक महेन्द्र और सङ्घमित्रा—दोनों की प्रव्रज्या महाराज धर्माशोक **के** (शासन के) छठे वर्ष में हुई। भिक्षुणी सङ्घमित्रा और भिक्षु **महेन्द्र** चाँद और सूरज की तरह बुद्धधर्म रूपी आकाश को सुशोभित करते रहे।

(महावंश से)

नालन्दा की एक झलक

(सुमन वात्स्यायन)

संसार के प्राचीन विश्वविद्यालयों में नालन्दा का एक विशेष स्थान है। नालन्दा का यह विशेष स्थान इसलिए नहीं है कि वह हमारे गत-गौरव का भग्नावशेष है जिस पर हम नाज करते हैं, और न इसलिए कि अपने जमाने का वह सबसे बड़ा विश्वविद्यालय था, बल्कि इसलिए कि वह हमारी संस्कृति, सभ्यता, साहित्य एवं कला का सारे संसार में

प्रतिनिधित्व करता था। हमारी संस्कृति के निर्माण में नालन्दा का स्थान सर्वोच्च है। नालन्दा से ही भारतीय संस्कृति धर्म और साहित्य की धारा चीन होकर कोरिया तथा जापान और तिब्बत होकर साइबेरिया तक पहुँची थी। सिरिया, यूनान, इजिप्ट आदि देशों में तथा जावा-सुमात्रा आदि द्वीपों में इसी नालन्दा ने हमारे संस्कृति का साम्राज्य स्थापित किया था। किन्तु दुःख है कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान का वह केन्द्र—नालन्दा—कालान्तर में धूलि में मिल गया, पर आज भी उसकी ऊँची-ऊँची दीवारें हमें अपने गत वैभव की उच्चता की ओर संकेत कर रही हैं।

स्थान-निर्देश

नालन्दा विश्वविद्यालय का भग्नावशेष पटना जिला के बिहारशरीफ से सात मील दक्षिण-पश्चिम है। राजगृह से यह लगभग सात मील उत्तर है। पटना-कलकत्तावाली मेन लाइनपर बख्तियारपुर ई० आई० आर० का एक स्टेशन है। वहाँ से एक बचकानी लाइन (बी० बी० एल) राजगृह तक जाती है। इसी लाइन पर नालन्दा एक स्टेशन है जहाँ से नालन्दा का यह प्राचीन खण्डहर लगभग आध या पौन माइल पर है।

संक्षिप्त परिचय

भगवान् बुद्ध के समय नालन्दा एक साधारण गाँव मात्र था। यथार्थ में यह मगध की प्राचीन राजधानी राजगृह के विशाल शहर का बाहरी हिस्सा (Suburb) था। यहाँ भगवान् बुद्ध आये थे और शायद इसी लिए बाद में वहाँ अनेक बड़े-बड़े विहार (बौद्ध मन्दिर) बनाये गये। क्रमशः इन विहारों की उन्नति होती गई। मौर्य-शासन काल में ये विहार बौद्धों के एक सम्प्रदाय—सर्वास्तिवाद—का केन्द्र बन गया। यह निर्विवाद है कि अशोक के समय में इसकी काफी उन्नति हुई होगी। शुङ्ग राज्यकाल में भी नालन्दा बढ़ती पर ही था।

बौद्धोंमें यह एक प्रथा सी है कि बड़े-बड़े मठों के साथ एक विद्यालय भी अवश्य रहे। अतः यह निश्चय है कि नालन्दा महाविहार के साथ भी कोई पाठशाला अवश्य थी और जो क्रमशः विहार की उन्नति के साथ-साथ उन्नत होती गई। किन्तु यह आश्चर्य की बात है कि फाहियान ने अपने यात्रा-विवरण में नालन्दा का कोई विशेष उल्लेख नहीं किया है। मुमकिन है उसका इधर ध्यान ही नहीं गया हो। यह भी संभव है कि विदेशियों के आक्रमण से नालन्दा उस समय तक नष्ट हो गया हो

महाराज हर्षवर्धन के समय में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्युन-सांग भारत-भ्रमण के लिए आया था। वह भारत में १५ वर्ष (६३० ई० से ६४५ ई०) रहा। उसने अपना कुछ समय नालन्दा में भी बिताया। उस समय नालन्दा उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उस समय वहाँ के आचार्य थे **'शीलभद्र'**। ह्युन-सांगने लिखा है, "अनेक विहार बने हुए हैं और उनके चारों ओर एक चहारदिवारी है। भीतर जाने के लिए सिर्फ एक ही दरवाजा है। इस पर द्वारपाल नियत है और प्रवेश चाहनेवालों को पहले द्वारपाल से ही शास्त्रार्थ करना पड़ता है। उचित उत्तर देने पर ही कोई प्रवेश पा सकता है।

"इस महाविहार में दस हजार (विद्यार्थी–) भिक्षु रहते हैं। यहाँ १८ बौद्धागम, बेद तथा दूसरे अनेक आगमों की शिक्षा दी जाती है। इनमें एक हजार ऐसे भिक्षु

हैं जो ३० आगमों को जानते हैं और दस ऐसे हैं जो ५० आगमों को जानते हैं; किन्तु इनमें आचार्य शीलभद्र ऐसे हैं जो सभी आगमों के पण्डित हैं। नालन्दा विश्वविद्यालय के खर्च के लिए एक सौ गाँव लगे हैं। इस विद्यालय का इतना नाम है कि अपनी प्रसिद्धि के लिए लोग झूठे भी कह देते हैं कि मैं नालन्दा से पढ़कर आया हूँ।"

ह्युन-सांग के बाद चीनी यात्री इ-त्सिंग भारत आया। यह भी कुछ दिन नालन्दा में ठहरा। इसके कथनानुसार नालन्दा विद्यालय के खर्च के लिए २४० गाँव लगे हुए थे।

आठवीं और नवीं सदी में विहार और बंगाल में पालवंशी राजाओं का शासन था। यह वंश बौद्ध था। पालवंश के शासनकाल में नालन्दा की और भी उन्नति हुई। जहाँ आज कल विहारशरीफ है वहीं 'उदन्तपुरी महाविहार' का निर्माण कराया गया। पालवंश के तीसरे राजा महाराज देवपाल (८१५–८५४) के समय में यवद्वीप (जावा-सुमात्रा) के शासक शैलेन्द्र वंशीय बालपुत्र ने नालन्दा में एक महाविहार बनवाया था। इससे जाहिर है कि नालन्दा की ख्याति दूर-दूर देशों तक पहुँच चुकी थी।

१३ वीं सदी में मुहम्मद इब्न बख्तियार खिलजी ने थोड़े से घुड़सवारों को लेकर नालन्दा पर हमला कर दिया। इस अचानक हमले को रोकने के लिए विश्वविद्यालय में न तो अस्त्र-शस्त्र थे, न फौजी नवजवान थे। इस बर्बर हमले ने सदियों के चिर संचित ज्ञान-भण्डार को नष्ट कर दिया। निरपराध और निशस्त्र भिक्षु तलवार के घाट उतार दिये गये। तमाम पुस्तकालयों और मठों में आग लगा दी गई। यहाँ के ऊँचे-ऊँचे भवन और सदियों का ज्ञान-भण्डार जलाकर खाक कर दिया गया। खोदाई में बहुत सारी जली हुई चीजें मिली हैं।

नालन्दा विश्वविद्यालय से पचासों मिशनरी चीन, तिब्बत आदि देशों को भेजे गये। नालन्दा तिब्बती साहित्य का भी एक महान् केन्द्र था। अनेक भारतीय विद्वानों ने तिब्बती सीखकर सैकड़ों-हजारों संस्कृत पुस्तकों का तिब्बती में अनुवाद किया। इन्हीं अनुवादों द्वारा तिब्बत को विशाल भारतीय साहित्य प्राप्त हुआ। आचार्य पद्मसंभव और शान्तरक्षित जैसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पण्डित तिब्बत के राजा खो-स्रोन-दूत्सान (७२८-७२६) के निमन्त्रण पर तिब्बत में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए गये। नालन्दा के अध्यापक-मण्डल में लगभग १५०० अध्यापक थे। इनमें आचार्य आर्यदेव, धर्मपाल, शीलभद्र, चन्द्रगोमिन, पद्मसंभव, शान्तरक्षित, बुद्धकीर्ति, कर्णश्री, सुमतिसेन, स्थिरमति आदि बहुत प्रसिद्ध हैं।

सम्पादकीय

पाठकों से

इस अंक के साथ 'धर्म-दूत' का छठा वर्ष समाप्त हो रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति की गड़बड़ी के कारण छपाई के साधन मिलने में बड़ी दिक्कतें उठानी पड़ी हैं और यह कठिनाई अब भी है। फिर भी इन विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए 'धर्म-दूत' अपने पाठकों की यथा शक्ति सेवा करता रहा और विश्वास है वह आगे भी अपने उद्देश्य की पूर्ति में पहले से भी अधिक तत्परता से संलग्न रहेगा।

एक बात और, अपना छठा वर्ष समाप्त करते हुए हम उन सज्जनोंको धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते जिन्होंने आर्थिक सहायता देकर हमारा बोझ हलका किया है। इस अवसर पर हम 'धर्म-दूत' के लेखकों और कवियों तथा अपने सहयोगी पत्र-पत्रिकाओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं जिनकी सहायता हमारे लिए वाञ्छनीय थी।

अनायास ही

८ दिसम्बर १६४१ को अनायास ही महाबोधि सभाके प्रधान मंत्री श्रीयुत देवप्रिय वलीसिंहजी को कलकत्ते में पुलिसने गिरफ्तार कर लिया। उनकी गिरफ्तारी का किसीको कोई ख्याल नहीं था। वे एक ऐसी धार्मिक संस्था के प्रधान मन्त्री हैं जिसका उद्देश्य विश्वको भगवान् बुद्ध का शान्ति-सन्देश सुनाना है। किन्तु सरकार को इससे क्या? २८ दिसम्बर को श्रीयुत देवप्रियजी को कुछ शर्तों के साथ रिहा कर दिया गया। बन्दी-जीवन ने उनके स्वास्थ्यको बहुत धक्का लगाया। आप स्वास्थ्य सुधारने के लिए छ मासका अवकाशले लंका गये हैं। आशा है, त्रिरत्न के अनुभाव से शीघ्र ही आप पूर्ण स्वस्थ होकर लौटेंगे।

माननीय श्रीयुत च्यांग-काइ-शेक का स्वागत

चीन के सर्वेसर्वा माननीय श्रीयुत जेनरलिसिमो च्यांग-काई-शेक और उनकी पत्नी श्रीमती शेक कुछ आवश्यक राजनीतिक परामर्श के लिए भारत आये थे। उनके आने की खबर पाते ही महाबोधि सभा और चीनी बौद्ध मन्दिर के प्रधान की ओर से उनका स्वागत करते हुए सारनाथ आने के लिए निमन्त्रण भेजा गया था। किन्तु समया-भाव के कारण वे यहाँ नहीं आ सके। आपके मंत्री श्रीयुत युकूयेडवाने तारका उत्तर देते हुए लिखा "जेनरलिसिमो और मैडम च्यांग-काई-शेक की आज्ञा से मैं आपको उनके स्वागत के लिए धन्यवाद देता हूँ। दु:ख है कि वे समया भाव के कारण पवित्र सारनाथ का दर्शन नहीं कर सकेंगे।"

हम धर्म दूत-परिवार की ओर से उनके इस तार के लिए धन्यवाद देते हैं और उनके सकुशल लौटने की मंगल कामना करते हैं।

हि० सा० सम्मेलन को धन्यवाद

गत जनवरी में हिन्दी साहित्य सम्मेलन,प्रयाग की ओर से भदंत आनन्द कौसल्यायन जी द्वारा अनूदित जातक (प्रथम खण्ड) प्रकाशित किया गया है और आशा है अगले दो मासों में दूसरा खण्ड भी छपा जायगा। ऐसे उपयोगी ग्रंथ के प्रकाशन के लिए सम्मेलन को हम हार्दिक धन्यवाद देते हैं और आशा करते हैं कि इस प्रकार सम्पूर्ण जातक कथा प्रकाशित हो जायगी।

भगवान् बुद्ध

(सुमन वात्स्यायन)

कुमारं प्रश्न यात—"छन्दक ! थुगु नदी या नां छु ?"

"नाथ ! थुकिया नाम अनोमा खः" ।

"अेजुसा जिगु प्रव्रज्यानं अनोमांहे ज्वी" ।

सारथी छन्दकया लागी कुमारया वाक्य बाण सिकनं अपो तीक्ष्ण जुल । व अश्रुमुख जुया हाल—"देव ! जिगन वने ? जिनं छपिंनापहे प्रव्रजित ज्वी" ।

"सारथि ! छं प्रव्रज्या लाय् फैमखु । का थ्व जिगु आभूषण, थ्वहे छन्त व छिमि वंशयात पर्याप्त ज्वी" ।

"देव ! जित थ्वम्वा" ।

"सारथि ! छ ख्वेमते, वना ब्वायात नेंकाब्यूकि छिकपिनि पुत्र अमृत मालेत काषाय वस्त्र पुना संन्यासी जुयावोन" । थथे घया कुमारं थःगु फुक्क आभूषण तोया छन्दक यात बिल । कुमारया मने थथे लुया वल—थ्व सुगन्धित चिकंनं युक्तगु हाकुगु ताता हाकः गु सँः जितः मलो । थुगु रत्न-जटित पीताम्बर जितः उपयुक्त मजू, वं थगु तलवार पिकया थःगुहे छाति व सँ त्वाह्वात हानं थःगु अमूल्य वस्त्रयात छम्ह साधारण भिखारीया वस्त्रे हिलाछोत ।

कुमार प्रव्रजित जुया चारिका यायां राजगृहे थेन । प्रातःकाल भिक्षायानिर्ति नगरे प्रवेश यात । गन गन कुमार वन अन अन मनुत हुल हुल मुन । छम्ह राजपुरुषं राजा याथास वना धाल—देव ! नगरे छम्ह रूपवानह्म प्रभावशालीह्म संन्यासी फोफों वयात्तोन । राजां वया ल्युल्यु वनेगु आज्ञा बिल । कुमार भिखां क्योना, नगरं प्याहां वना, छमा सिमाक्वे आसन दयेका भोजन यायेत फेतुला । प्रथम नैत्येंगु जापे लेहे वतात गर्खे चोन । वयात ह्वैथें चोन । थ्वयांन्ह्यो थज्येगु नयेगुयाजा छुखँ भिखां जकहेंनं खंगु मदुनि । अेसान कुमार विचलित मजू । थःत थःमं धैर्य बिल—"सिद्धार्थ ! छ सांसारिक सम्पत्ति सम्पन्नगु कुले जन्मे जुयाभिंभिंगु जाकिया जा नया जीवन-हना वया चोंचोन हानं थैंछ छेंछि तोता पोपि जोना भिखान्न नया जीवन-निर्वाह यायूत वसेंलि थ्व फुक्क छुयाना चोना ?"

राजां समाचार सिया कुमार याथां क्या प्रणाम याना फेतुल । वं कुमार यात फुक्क सांसारिक वस्तु यागु लोभ केन । किन्तु कुमारं बे चोंगु ह्य यात थें वास्ताहे मया । अन्ते राजां कुमार यात थुगु कबुल याकल—"बुद्ध ज्वीव जि थुगु राज्येनिंवे" । अले राजा राज भवने वन ।"

राजगृहं निसे चारिका यायां क्रमशः आलारकालाम व उद्रक राम पुत्रपिंथाय् येंका नेना विज्यात—"आवुस ! जि थुगु धर्म-विनये ब्रह्मचर्य वास याय् मासे ओ" थथेलिसः नेन—"जिउ, आवुस , चों ! थ्व धर्म-विनय याकनं सन्मार्गे येंकिगु खः" । कुमार आपालं समय तक थ्व आचार्यपिं नाप अभ्यास याना चोन । किन्तु वयात छुं सन्तोष मदु । अलेवं मत्ती ल्वीकल—थ्व आचार्यपिंकेहे जक श्रद्धा मदु, जिकेनं दु । थुमिकेहे जक वीर्य, स्मृति, समाधि तथा प्रज्ञा, दुगु खैमखु, जिकेनंदै । अथेजुसे लि जिं थः थमंहे छाये प्रयत्न मयाये" कुमार अमित अपर्याप्त खना, उगु धर्म विरक्त जुया अनं वन ।

कुमार यात गुरुं संप्रदायया गद्दी काय्मागु धैगु छु' दुगुमखु। उकिं कुमारया मन थुकिंनं हतोत्साह मजू। वंजा "किं कुसल-गवेसी" कुसल धयागु छुख? या गवेषक जुया भोग यात तोताछोत। वयात निराशी सतेयाये मफु। व उगु श्रेष्ठ शालपद यात मामां मामां उरुवेला सेनानी निगम थें'कः वन। अनयागु रमणीय भूखण्ड, सुन्दर पुष्प-भारं कोको छुना चोंगु सिमात, लिक्कहे कलकल हाहां व्वानाचोंगु नदी, हानं उथासंहे रमणीयगु छ्येँ, गाँ यात खनी वं अनहे आसन जतेयाना छोत। अवले कुमारया मने थथे लुया वया चोन—"गथे मिहनत यासां लखं प्पाक्यतः गु सिं मि पिकाये फैमखु अथेहे गुह्म श्रमण ब्राह्मण काय' काम-वासनां लग्न जुया चोनी, वं श्रेष्ठ पद्या निर्ति वृथा परिश्रम याना चोनी। गुह्म सिया काम-वासना, काम-स्नेह, काम-परिदाह व काम-पिपासा दुने अन्तः करणं लिसें मफुनि वं प्रयत्नशील जुयानं दुःखद कटु वेदनायात सह यायेहे माली। व परम अनुत्तर ज्ञाने अयोग्यहे तिनि।"

कुमार मन व शरीर यात तपेयाना, कष्ट सहलपा ज्ञानामृत पान यायेत उद्यत जुया चोन। व वाकुछिना, जिह्वाँ तालूयात ह्वाना, मनयात निग्रह यायेत चोनाछोत।
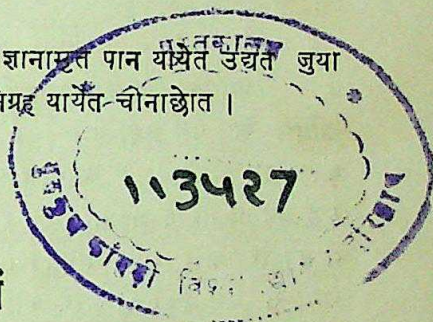
हमारी नजरों में

भगवान् बुद्धवतार और उनके सांख्य वेदान्त एवं योग के तत्त्वयुक्त उपदेश; लेखक—श्री पं० विश्वनाथ शास्त्री वेद व्याकरण तीर्थ, प्रकाशक—अखिल भारतीय हिंदू सेवा संघ, १०२ मुक्ताराम बाबू स्ट्रीट कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या ४८, मूल्य =)

पुस्तकका विषय नाम ही से स्पष्ट है। इसमें बौद्ध धर्म और हिन्दू धर्म की एकता पर प्रकाश डाला गया है। निस्संदेह लेखक ने इस पुस्तक के लिखने में बड़ी मेहनत की है। फिर भी इस विषय पर जितनी गहराई तक जाने की ज़रूरत थी वहाँ तक जाने की कोशिश नहीं की गई है। हम अपने शुभेच्छु हिन्दू भाइयों की इस समन्वय भावना की तारीफ़ करते हैं। पुस्तक पठनीय है।

बुद्ध-हृदय; लेखक—स्वामी सत्यभक्त,प्रकाशक—सत्याश्रम, वर्धा (सी० पी०) मूल्य छः आने। इस पुस्तक में भगवान् बुद्ध के मुँह से ही उनका जीवनचरित और उपदेश कहलाया गया है। बुद्ध और बौद्धधर्म के ज्ञान के लिए पुस्तक उपयोगी है। हम आशा करते हैं कि स्वामी सत्यभक्त जी की कलम से ऐसी ही और पुस्कें प्रकट होंगी।

आरती -(नववर्षांक) प्रकाशक—आरती मन्दिर, महेन्द्रू, पटना; वार्षिक मूल्य ५) इस अंक का १।)। बिहार पत्र-पत्रिकाओं के लिए मरुभूमि समझी जाती रही है। 'आरती' इसी महान् कमी को बड़ी शान से पूरा कर रही है।

दीपक (सम्मेलनांक) वार्षिक मूल्य २॥); एक अंक का ।), इस अंक का ॥)। पता—साहित्य-सदन अबोहर (पंजाब)। गत दिसम्बर में अखिल भारतीय साहित्य सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन अबोहर में ही हुआ था। दीपक के प्रस्तुत अंक में उस कार्यवाही का विस्तृत परिचय दिया गया है। दीपकका यह अंक संग्रहणीय है।

हिन्दी में एक नई चीज

'धर्म-दूत' की महान साधना का फल—'बुद्ध-वचनांक'

लोग पूछते हैं कि हिन्दी में भगवान् बुद्ध का उपदेश पढ़ने के लिए किसी एक पुस्तक का नाम बतलाइए। यथार्थ में अभी तक यह एक खटकनेवाला अभाव रहा है। इसी कमी को दूर करने के लिए 'धर्म-दूत' का वैशाख अंक 'बुद्ध-वचनांक होगा और इसमें सारे त्रिपिटक के चुने हुए बुद्ध-वचन संगृहीत होंगे। यह अंक सुन्दर कागज पर, अनेक अलभ्य चित्रों से सुसज्जित होगा। इस अंक की कीमत होगी आठ आने। किन्तु **अभी से एक रुपया देकर ग्राहक बनानेवालों को यह अंक मुफ्त मिलेगा** अर्थात् एक ही रुपये में साल भर 'धर्म-दूत' भी और यह अपूर्व विशेषांक भी।

बुद्ध जयन्ती के लिए दान

भगवान् बुद्ध का जन्म, बुद्धत्व और महापरिनिर्वाण की पवित्र तिथि इस वर्ष ३० अप्रिल को पड़ रही है। हर साल की तरह इस वर्ष भी महाबोधिसभा की ओर से कलकत्ता, बुद्ध गया, सारनाथ, दिल्ली, बम्बई अजमेर, कालीकट, मद्रास आदि शहरों में बुद्ध-जयन्ती मनाई जायगी। इस अवसर पर सार्वजनिक सभा, गरीबों को भोजन, अस्पतालों में उपहार और भिक्षु-भोजन आदि कराया जाता है। इस उत्सव को सफल बनाने में कम से कम १०००) रूपये की आवश्यकता है। अतः हम समस्त बौद्धधर्म के प्रेमियों से निवेदन करते हैं कि वे इस पवित्र तिथिको सफल बनाने के लिए महाबोधि सभा को सहायता प्रदान करें। सहायता भेजनेवालों का नाम उनके दान की रकम के साथ 'धर्म-दूत' और 'महाबोधि' पत्रिका में छापा जायगा।

निवेदक

मंत्री, महाबोधिसभा सारनाथ (बनारस)

प्रकाशक—धम्मजोति, महाबोधि-सभा, सारनाथ, बनारस।
मुद्रक—श्री अपूर्वकृष्ण वसु, इंडियन प्रेस, लिमिटेड, बनारस-ब्रांच।